विराम—संकेत

लेखक
पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारी,
एम्. ए.
पं० गिरिजादत्त शुक्ल, 'गिरीश',
बी. ए.

प्रकाशक
साहित्य-मन्दिर
लखनऊ

विराम-सन्धि

लेखक

पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारी एम्. ए.
पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी. ए.

प्रकाशक
साहित्य-मन्दिर
पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता
लखनऊ

मुद्रक
पं० राजराजेश्वरप्रसाद भार्गव,
अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स, चारबाग़, लखनऊ.
सन् १९३३ ई०

निवेदन

हिन्दी का पद्य-साहित्य जितना उन्नत है उतना ही गद्य-साहित्य हीन श्रेणी का रहा है। किन्तु इधर थोड़े वर्षों से इस क्षेत्र में जो उल्लेख-योग्य क्रियाशीलता देखी गई है उसके फल-स्वरूप यह शिकायत भी दिन-दिन कम होती जा रही है, यह सन्तोष की बात है। गद्य की शक्ति-वृद्धि के साथ-साथ विराम-चिन्हों के यथेष्ट प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव भी होने लगा है। इस छोटी-सी पुस्तिका का प्रणयन इन चिन्हों के प्रयोग को संयमित और नियमित करने की दशा में एक लघु, और जब तक किसी क्षमता-शालिनी लेखनी से समुचित पथ-प्रदर्शन न प्राप्त हो तब तक हिन्दी के विद्वानों द्वारा कृपा पूर्वक क्षमा-प्रदान-योग्य नम्र प्रयत्न है।

खेद है, इस पुस्तक का मुद्रण ऐसे समय में हुआ है जब इसके प्रधान लेखक मान्यवर पं० वेङ्कटेशनारायण तिवारी एम्० ए०, इसके प्रूफ़-संशोधन आदि में सहयोग नहीं कर सकते थे। मुझे भी प्रारम्भ के थोड़े-से पृष्ठों को छोड़कर शेष का प्रूफ़ देखने का अवसर नहीं मिला। ऐसी दशा में स्व-भावतः पुस्तक का रूप वैसा नहीं हो सका जैसा वे चाहते थे। अगले संस्करण में उन त्रुटियों को जिन्हें जानते हुए हम दूर नहीं कर सके तथा उन्हें भी जो इस विषय के पारंगत विद्वानों द्वारा हमें बता दी जायँगी, दूर करने की हम चेष्टा करेंगे।

निवेदक

गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

विषय-तालिका

प्रथम अध्याय

विषय	पृष्ठ
विषय-प्रवेश	१-३
विरामों का महत्व	३-८
विराम-संकेतों का वर्णन	८-९

द्वितीय अध्याय

विराम-संकेतों का महत्त्व	९-१०
प्राचीन हिन्दी-गद्य की शैली और विराम-चिन्हों का प्रथम प्रवेश	१०-२३
मुख्य विराम-संकेत और उनके विविध प्रयोग	२३-२७
पूर्ण विराम का अत्यधिक प्रयोग	२७-३३
अल्प विराम का उचित और अनुचित प्रयोग	३३-३५
विचार-वर्गीकरण और अर्द्ध विराम-चिन्ह	३५-४५
विराम-संकेतों का उचित से अधिक प्रयोग	४६-६२
विराम-संकेतों का आवश्यक से कम प्रयोग	६२-६५
गणना में विराम-चिन्ह	६६
कोष्ठक	६७

विषय	पृष्ठ
स्वतंत्र वाक्यों में अल्प विराम का प्रयोग	६७-७०
अधीन वाक्यों के पहले अर्द्ध विराम का प्रयोग ...	७०
प्रश्न-वाचक और आश्चर्य्य-चिन्ह	७१-७३
आदेशक	७३-८४

तृतीय अध्याय

कुछ अन्य विराम-चिन्ह	८४-९४

विराम-संकेत

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

हिन्दी भाषा के उत्थान के आधुनिक काल में पंडित महावीर-प्रसाद द्विवेदी का बहुत बड़ा भाग है। बाबू हरिश्चन्द्र के बाद गद्य और पद्य की शैलियों के विकास में उन्होंने चिरस्थायी महत्त्व का प्रयत्न किया। जो पथ उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से तैयार किया उसी के सहारे हिन्दी साहित्य आज कल द्रुत गति से अन्तिम ध्येय की ओर बढ़ता जा रहा है। उनकी सेवाएँ अनेक हैं और

उनमें विराम-संकेतों के नियमित प्रयोग की ओर हिन्दी संसार का ध्यान आकर्षित करना कुछ कम उपयोगी बात नहीं है। बहुत सम्भव है कि द्विवेदी जी के पहले भी हिन्दी के लेखक विराम-चिन्हों का प्रयोग करते रहे हों। लेकिन हर महीने 'सरस्वती' द्वारा विराम-चिन्हों की ओर ध्यान दिलाकर द्विवेदी जी ने छोटे और बड़े सभी लेखकों को विराम-चिन्हों के महत्त्व और उनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ न कुछ विचार करने के लिए मजबूर किया। अब आज कल विराम-संकेतों का प्रचुर प्रयोग हिन्दीवाले करते हैं। लेकिन यदि सिद्धहस्त लेखकों की कृतियों का निरीक्षण किया जाय तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जायगी कि इन संकेतों के व्यवहार में किन्हीं पूर्व-निश्चित और सर्वमान्य नियमों का अनुसरण नहीं किया जाता है। यह अराजकता दुख-प्रद है। इस पुस्तिका के लेखकों को बड़ी ख़ुशी होती यदि इन दोनों से योग्यतर महाशय इस विषय के विवेचन के लिए अपने अनमोल समय के कुछ अंश को लगाने के लिए तैयार होते। जहाँ तक हमें मालूम है, अध्यापक रामरत्न जी की लिखी हुई 'विराम-चिन्ह' नाम वाली पुस्तिका के अतिरिक्त इस विषय की और कोई दूसरी पुस्तिका हिन्दी में अब तक नहीं निकली है। सम्मेलन की लेखमाला में इस विषय पर एक ही लेख मिलता है और वह भी अध्यापक जी की पुस्तिका के आधार पर लिखा गया है। हाँ, द्विवेदी जी अपने ज़माने में कभी-कभी इस विषय पर एकाध नोट 'सरस्वती' के सम्पादकीय विभाग में लिख दिया करते थे। पं० कामताप्रसाद गुरु ने भी फुटकर लेख और

टिप्पणियाँ इस सम्बन्ध में 'सरस्वती' के लिए लिखी हैं। लेकिन विचार-शील पाठक स्वयमेव इस बात को समझ सकते हैं कि फुटकर टिप्पणियाँ या लेखों से अभाव की पूर्ति होना असम्भव है। इसीलिए हम दोनों इस पुस्तिका को लिखने के लिए विवश हुए हैं। निवेदन केवल इतना है कि विराम-सम्बन्धी सिद्धान्तों के विवेचन में हमने साधु प्रयोगों को यथाशक्ति ढूँढ़ निकालने की चेष्टा की है। सम्भव है कि दूसरों की सम्मति में हमारा मत अमान्य हो। ऐसी अवस्था में मतभेद का होना बहुत सम्भव है। परन्तु हम दोनों को यह आशा है कि मतभेद के द्वारा ही हम सब उन नियमों तक पहुँच सकेंगे जो विवाद की कसौटी पर खरे निकलेंगे। यदि इसमें कही हुई कोई बात असंगत जान पड़े तो उसे लेखक-द्वय की अल्पज्ञता समझकर पाठक क्षमा करें।

विरामों का महत्त्व

हिन्दी में विराम-संकेत एक नई चीज़ हैं, उतनी ही नई हैं जितना लेख का पैराग्राफ़ों में विभाजन। हमारे यहाँ ग्रन्थों में विराम-संकेतों का काम केवल पाई (।) से ही लेखक और कवि निकाल लिया करते थे। किन्तु योरोपीय लेखक अपने विचारों को लेख-द्वारा व्यक्त करने में केवल 'पाई' या पूर्ण विराम से ही सन्तुष्ट न रहे, उन्होंने और भी कई संकेत बनाये, जिनसे पद में प्रयोग किये हुए शब्दों के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट करने में उन्हें विशेष सहायता मिलती है। अँगरेज़ी साहित्य के प्रचार के साथ ही हिन्दुस्थान में इन संकेत-चिन्हों का भी चलन शुरू हुआ। लेकिन चलन के साथ ही साथ इनके व्यवहार में

उन नियमों की ओर ध्यान नहीं दिया गया, जिनका प्रतिपालन अँगरेज़ लेखक करते हैं। इसीलिए मनमाने ढंग से इनका प्रयोग आज कल देखने में आता है। उदाहरण के लिए, 'कि' के पहले कामा (,) का प्रयोग होना चाहिए, या उसके बाद, या 'कि' के न पहले और न बाद ? तीनों ही प्रयोगों के समर्थन में बड़े बड़े महारथियों और हिन्दी के धुरन्धर लेखकों के नाम लिए जा सकते हैं। परन्तु तीनों में से कौन सही है और क्यों, इस पर विचार करने की आवश्यकता इन महारथियों ने नहीं अनुभव की। नीचे हम कतिपय दृष्टान्त देते हैं:—

१—कि के बाद कामा (,) का प्रयोग:—

अब लौटोगे कि, यहीं गड़ गये— श्रीजयशंकरप्रसाद

तुमने तो कहा था कि, आज जनाकीर्ण ..... श्रीजयशंकरप्रसाद

जैसे वह डरती थी कि, बुड्ढा न जाने क्या-क्या कह बैठेगा –

श्रीजयशंकरप्रसाद

अब इतनी पुस्तकें निकलने लगी हैं कि, जिनमें यह छाँट कर निकालना कि,......— तृतीय हि० सा० स० का कार्य्य विवरण

आशा है कि, तो भी, हिन्दी के विद्यार्थियों को .....—

चिह्न-विचार में अध्यापक रामरत्न

अभी कल की बात है कि, हमारे देश के......—

पं० बदरीनारायण चौधरी

हमारा परम सौभाग्य है कि, घर बैठे आप जैसे साहित्य-सेवियों और मातृ-भाषा के उपासकों के दर्शन मिले— पं० छोटूलाल मिश्र

परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, वह आगे ऐसे कवि न पाएगा।

पं० बदरीनारायण चौधरी

आपने कहा कि, हमारे पूर्वज पश्चिम से आकर बंगाल में बसे थे— हि० सा० स० (तृतीय) का कार्यक्रम

यह देखकर कि, शिक्षा-विभाग के पाठ्यक्रम में.....— ,,

इस सम्मेलन को दुःख है कि,......— ,,

यह सम्मेलन प्रार्थना करता है कि,......— ,,

नियमावली पढ़ने से पहले यह कहा कि, गत वर्ष यह निश्चय हुआ था कि, एक वर्ष वाली नियमावली पर समाचार-पत्रों में आन्दोलन हो—

२—'कि' के पहले कामा (,) का प्रयोगः—

ऐसे ढंग से किया गया है, कि अच्छी हिन्दी जानने वाले पाठक......— श्रीउमादत्त शर्मा

न यही कहा जा सके, कि, यह 'ओ' की तरह कहा जाता है—

श्रीसूर्य्यकान्त तिवारी

कुछ साफ़ करके यों कहना चाहिए, कि, वह जा रहा है— ,,

यही बात है, कि क्रिया का रूप नहीं बदलता— ,,

उन्होंने इसी समय में प्रतिज्ञा की, कि मैं उत्तराधिकारी नहीं रहूँगा— एक विज्ञापन

उसी समय महाराणा प्रताप ने एक ऐसी हुंकार ध्वनि की, कि समस्त देश काँप उठा— एक विज्ञापन

आपको उचित ही है, कि ऐसा मार्ग बताएँ—

हि० सा० स० के दशम अधिवेशन के सभापति का भाषण

मुझे खेद से कहना पड़ता है, कि यहाँ आप महानुभावों के ...—

श्रीविजयानन्द त्रिपाठी

इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही है, कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन........— रायबहादुर श्रीविष्णुदत्त शुक्ल

यह कौन नहीं जानता, कि जब इंगलैंड ..— ,, ,,

अथवा यों कहें, कि यदि लल्लूलाल उसके जन्मदाता.....—

श्रीबदरीनारायण चौधरी

खेद है, कि इस वर्ष भी सदस्यों की उपस्थिति की औसत संख्या आठ ही रही—

हि० सा० स० [पटना] का कार्यक्रम

आशा है, कि वकील लोग......— ,, ,,

सम्मेलन चाहता है, कि भारत में ऐसे विद्यालय बहुत से खोले जायँ— हि० सा० स० का०

यहाँ पर यह कहना हम अपना कर्तव्य समझते हैं, कि इस समय मदरास प्रान्त में हिन्दी प्रचार के लिए लगभग १०७०) मासिक का व्यय हो रहा है— हि० सा० स० का०

राम ने कहा, कि मैं रावण को मारूँगा— अज्ञात

गोपाल ने उत्तर दिया, कि मैं कलकत्ते जा रहा हूँ— ,,

उसने ऐसा मारा, कि उसके मुँह से खून निकल आया— ,,

हमने प्रतिज्ञा की है, कि अभियुक्त क्षेत्र के बाहर न जायेंगे—निराला

३—'कि' के न आगे और न पीछे कामा (,)

पता चलता है कि राष्ट्र के पूज्य नेताजी का स्वास्थ्य अब अच्छा है—

भारत

पता चलता है कि प्रधान मंत्री ....— ,,

इससे चिन्ता का प्रश्न हो गया कि कहीं इनमें अदालती झगड़ों का चस्का तो नहीं पड़ेगा — श्रीनरदेव शास्त्री

राजा का प्रधान कर्तव्य है कि प्रजा में विद्या का प्रचार करे—

श्रीरामलोचनशरण

क्या कोई कह सकता है कि डाक्टर ब्राउन...…—
श्रीरामचन्द्र शुक्ल

यही समझ कर चुप रही कि ज्यों ज्यों .. — श्रीरामचन्द्र वर्म्मा

आरम्भ ही से इस बात पर ध्यान रखा गया है कि केवल वर्ष में एक बार मिलकर......— श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन

मैं समझता हूँ कि इस बात को स्वीकार करने में किसी को आपत्ति न होगी — श्रीपुरुषोत्तमदास टंडन

यह मत आदरणीय है कि भारत में .....— मिश्रबन्धु

कुछ कहने का साहस करने के पूर्व मैं आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ कि......— श्रीकृपाशंकर तिवारी बी. ए.

प्रथा यह चल पड़ी कि अग्रलेख कार्य विवरण के साथ दूसरे भाग में प्रकाशित कर दिये जायँ— श्रीकृष्ण चैतन्य गोस्वामी

जोश से मतलब यह है कि कवि जो कुछ कहे इस तरह कहे मानो उसके प्रयुक्त शब्द आप ही आप उसके मुँह से निकल गये हैं—
श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

अच्छी कविता की सबसे बड़ी परीक्षा यह है कि उसे सुनते ही लोग बोल उठें कि सच कहा— श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

पाठक देखेंगे कि हाली की राय संस्कृत-साहित्य के आचार्यों से बहुत कुछ मिलती है— श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

एक पंडित का मत है कि कविता एक भ्रम है— श्रीमहावीरप्रसाद द्विवेदी

ऊपर के उदाहरणों को ध्यान से पढ़िए और फिर सोचिए कि क्या तीनों ही प्रयोग ठीक हो सकते हैं ? यदि तीनों ठीक नहीं हैं तो फिर इसका विचार कीजिए कि इन तीनों में से कौनसा प्रयोग साधु है और वह क्यों साधु है । आगे चलकर हम अपनी सम्मति देंगे कि कौन प्रयोग ठीक है और क्यों । इस समय हमारा उद्देश्य

केवल मात्र यह है कि हम पाठकों का ध्यान इस विराम-सम्बन्धिनी अराजकता की ओर आकर्षित करें और उनसे पूछें कि क्या ऐसी स्थिति का जारी रहना समुचित है ?

इस सम्बन्ध में अभी इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि 'कि' के बाद कामा (,) के प्रयोग की प्रथा बँगला साहित्य से हिन्दी में आई है। बँगला की नक़ल का हमारा अभ्यास इतना बढ़ गया है कि उसकी सभी बातें आँख बन्द कर हम अपने यहाँ ले आना चाहते हैं। तीसरी श्रेणी के उदाहरण अर्थात् 'कि' के न पूर्व और न बाद कामा का प्रयोग करना अँगरेज़ी प्रणाली का अनुसरण है। बँगला प्रथा ठीक है या अँगरेज़ी प्रणाली समुचित है, इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

विराम-संकेतों का वर्णन

इसके पहले कि हम विषय की विवेचना शुरू करें, पाठकों की सुविधा के लिए विराम कितने तरह के होते हैं, इसका वर्णन कर देते हैं। इनकी सूची निम्न है:—

चिह्न	अँगरेज़ी नाम	हिन्दी नाम
, Coma	कामा	अल्पविराम
; Semi-colon	सेमी कोलन	अर्द्ध विराम
: Colon	कोलन	विशेषविराम
— Dash	डैश	आदेशक
' ' Inverted coma	इन्वरटेड कामा	उद्धरण
. Foolstop	फुलस्टाप	पूर्णविराम
? Question mark or Mark of Interrogation	क्वैश्चनमार्क	प्रश्नवाचक

!	Mark of Exclamation	एक्सक्लैमेशनमार्क	आश्चर्य्य-चिह्न
( )	Bracket	ब्रैकेट	कोष्ठक
:—	Colon & Dash	कोलन ऐंड डैश	निम्नलिखित का चिन्ह
०	Contraction	कान्ट्रैक्शन	संकीर्णता-सूचक
❀×†‡||	Foot-note	फुटनोट	टिप्पणी-सूचक

द्वितीय अध्याय

विराम-संकेतों का महत्त्व

विराम-संकेतों का महत्त्व दो प्रकार का है। एक अलंकारिक (Rhetorical) है और दूसरा युक्ति-सिद्धि (Logical)। वाक्य में शब्दों के परस्पर सम्बन्ध और पद में वाक्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का द्योतक विराम-संकेत है। जैसे, "राम ने रावण को मारा, और सीता का उद्धार किया" इस पद में दो वाक्य हैं, और इन दोनों का समान सम्बन्ध है। इस समानता को व्यक्त करने के लिए संकेत-विशेष के प्रयोग की आवश्यकता है। व्याकरण के नियमों के अनुकूल पद में प्रत्येक शब्द और वाक्य का स्थान निश्चित होता है। इस सम्बन्ध के स्पष्टीकरण में संकेत-चिन्ह द्वारा विशेष सहायता मिलती है। लेकिन इससे भी अधिक महत्त्व का काम इन चिन्हों द्वारा लेखक लेता है। आश्चर्य, प्रश्न, स्वर का उठना और गिरना तथा ठहराव के भावों को वक्ता अपनी चेष्टाओं से प्रकट करने में समर्थ होता है। लेकिन वक्ता के साधन लेखक को प्राप्त नहीं हैं। उसे तो मुर्दा काग़ज़ पर मुर्दा अक्षरों के द्वारा अपने भाव-रञ्जित विचारों को व्यक्त करने की चेष्टा करनी पड़ती है।

अतएव वक्ता के लिए भाव-प्रदर्शन में जो सहायता समुचित चेष्टाओं से मिलती है, ठीक उसी प्रकार की सहायता लेखक को कोरे छपे हुए शब्दों को भावों से रञ्जित करने में विराम-संकेतों के द्वारा प्राप्त होती है। "उसने चोरी की।" इस तरह से लिखने पर इस वाक्य का अर्थ केवल इतना है कि किसी व्यक्ति विशेष ने चोरी की है। लेकिन यदि कोई हमें यह सूचना दे कि लल्लू ने चोरी की और हमें आश्चर्य हो कि लल्लू जैसे ईमानदार आदमी ने चोरी ऐसा दुष्कर्म किया तो हम लिखेंगे "उसने चोरी की!" लेकिन लल्लू के चोरी करने का समाचार पाकर हमको इसकी सत्यता में सन्देह हो तो हम इसी वाक्य को लिखेंगे "उसने चोरी की?" एक ही बात को हम कई ढंग से, आवश्यकता के अनुसार, भिन्न प्रकार से बोलते हैं। क्योंकि भावों में भिन्नता है। लिखने में भावों की इसी भिन्नता को हम इन विराम-चिह्नों द्वारा प्रकट करते हैं। और, इन्हीं संकेतों के द्वारा पाठक लेखक के हृदयस्थ भावों को समझने में बहुत अंशों तक सफल होता है।

यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या जब हिन्दी के लेखक विराम-संकेतों का प्रयोग नहीं करते थे उस समय उनके भावों के समझने में पाठकों को कठिनाई होती थी? नीचे हम हिन्दी के पुराने लेखकों की शैलियों के कुछ नमूने उद्धत करते हैं, जिनमें विराम-चिन्हों का प्रयोग नहीं किया गया है:—

१—चिट्ठी परवाना वि० सम्वत् १२३५:—

"श्री हरी एक लिंगो जयति

श्री श्री चीत्रकोट बाई साहब श्री प्रथुकुवर बाई का बारण गाम

मोई आचारज भाई रूसीकेसजी बांच जो अपन श्रीदलीसूं भाई लंगरी रांजी आग्रा है जो श्रीदलीसूं वी हजूर को वी खास रुका आयो है जो मारी वो पदार वाकी सीखवी है नेदली काकाजी पेद है जो का (गदवाच) त चला आव जो थानेमा आगे जाइगे पडेगा थाके वास्ते डाक वेठी है श्री हजूर·····वी हुक्म वेगीयो है जो थे ताकीद सूं आव जो थारे मंदर को व्याव कामारथ अवार—करोगा दलीसु आग्रा पाछे करोगा ओर थे सबेरे दन अठे आद्य सो × चैत सुदी" १३॥ संवत् ११ (४५)

२—"महाराजाधिराज आदेशकर्ता श्रीरावलजी श्रीश्रीसमरसिंहजी श्रीश्रीचित्तौर नरेश की आज्ञा से आचारज ठाकुर ऋषीकेश को (दिया गया) मुईखेरे का ग्राम तुमको दान में दिया गया। उसको हरा भरा और आबाद करो। जमाखातिर से उसको हरा भरा और आबाद करो। वह तुम्हारा है। दुबेववा मुकुन्दनाथ द्वारा आज्ञा हुई" मिती जेठ सुदी १३ संवत ११४५।

३—महात्मा गोरखनाथ जीः—

"स्वामी तुमै तौ सतगुरु अम्है तौ सिष सबद एक पुछिबा, दया करि कहिबा, मन न करिबा रोस। पराधीन उपरांति बंधन नाही। सुआधीन उपरांति मुकुति नांही। चाही उपरांति पाप नांही। अचाहि उपर इति पुनि नांही। कम उपरांती मल नांही। निहकम उपरां इति निरमल नांही। दुख उपरांति कुबुधि नांही। निरदोष उपरांति सुवधि नांही। सुसबद उपरां इति पोष नांही। अजपा उपरांइति जाप नांही। घोर उपरांइति मंत्र नांही।"

४—महात्मा विट्ठल स्वामीः—

"प्रथम की सखी कहत है जो गोपी जन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूबि के इनके मन्द हास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुंज विषै श्रृंगार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई॥"

× अनन्द सम्वत् ११४५ = वि० सं० १२३५

५—महात्मा गोकुलनाथ जी:—

"श्री गुसाईं जी के सेवक एक पटेल की वार्ता।

सो वह पटेल वैष्णवराज नगर में रहतो हतो वा पटेल वैष्णव के एक बेटा हतो और एक स्त्री हती और बड़े बेटा के दो स्त्री हती और छोटे बेटा के एक स्त्री हती ऐसे सात मनुष्य श्री गुसाईं जी के शरण आये और श्रीठाकुरजी पधरा के सेवा करन लगे ॥"

६—नाभादास जी:—

"तब श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये। फिरि अपर वृद्धसमाज तिनको प्रनाम करत भये ॥"

७—बनारसीदास जैन:—

"सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। संशय विमोह विभ्रम ए तीनि भाव जामें नांही सो सम्यग् दृष्टी।"

८—जटमल कवि:—

"श्रीरामः प्रसन्न होये। श्रीगनेसायनमः। लक्ष्मीकांत। हे बात कीसा चितौड़ गड़ के गोरा बादल हुवा है जीनकी वार्ता की कीताब हींदवी में बनाकर तयार करी है ॥ सुख संपतदायक सकल सीद बुंद सहेत गनेस। वीगण बींजर लावीन सोवे लेनुज परमेस ॥ १ ॥ दूहा ॥ जगमलवाणी सर सरस कहता सरस बरवंद। चइवाणा कुल उवधरो हुवा जुवा चावंद ॥ २ ॥ गोरे की आवरत आवंसा वचन सुनकर आपने खावंद की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सीवपुर में जाकर बाहा दोनो मेले हुवे ॥ गोरा बादल की कथा गुरु के वस सरस्वती के मेहरवानगी से पुरन भई तीस वास्ते गुरु कूं सरस्वती कूं नमस्कार करता हूं। ये कथा सोल से अस्सी के साल में फालगुन सुदी पूनम के रोज बनाई ये कथा में दो रस हे वीरारस व सीनगार रस है सो कथा। मोरछड़ो नाव गाव का रहने वाला सर जगहा उस गाँव के लोग भोहोत सुकी हे घरघर में आनन्द होता है कोई घर में फकीर दीखता नहीं।"

९—महात्मा तुलसीदासजी:—

"मौजे भदेनीमह अंश पांच तेहिमह अंश दुइ आनन्दराम तथा लहरतारा सगरेउ तथा छितुपुरा अंश टोडरमलुक तथा नयपुरा अंश टोड़रमलकी हील हुज्जती नास्ती।"

१०—महाकवि देवजी:—

'महाराज राजाधिराज ब्रज जन समाज विराजमान चतुर्दश भुवनविराज वेद विधि विद्या सामग्री सम्राज श्री कृष्णदेव देवाधिदेव देवकीनन्दन जदुदेव यशोदानन्द हृदयानन्द कंसादि निकंदन वंसावतंस अंसावतारसिरोमणि विष्टपत्रय निविष्ट गरिष्ट पद त्रिविक्रमण जगतकारण भ्रमणानिवारण मायामय विभ्रमण सुररिषि संगमन राधिकारमण सेवक वरदायक गोपी गोपकुलसुखदायक गोपाल बाल मंडलीनायक अघाद्यक गोवर्धनधरण महेन्द्रमोहापहरण दीनजन सज्जनसरण ब्रह्मविस्मय वितरण परब्रह्म जगज्जन्म मरण-दुःख संहरण अधमोद्धरण विश्वभरण विमलजसः कालिमल विनासन गरुड़ासन कमल नयन चरण कमल जल त्रिलोकी पावन श्रीवृन्दावन विहरण जयजय।"

११—सूरति मिश्र:—

"सीस फूल सोहाग अरु बेंदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये हैं।"

१२—दासजी:—

"मधु छुये ते त्वचा को सुख होय पीव ते जीव को बोल सुनेते कानों देखेते दगन को सुगन्धते नाक को सुख होय यों पाचों इन्द्रियन को दुख दूरि होतु है।"

१३—सोमनाथजी—

"द्वै भेद अविवंछिति वाच्य ध्वनि के अर्थान्तर संक्रमित और अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि और एक भेद असंलक्ष्यक्रमकौ औ संलक्ष्यक्रम व्यंगि-

ध्वनि द्वै भेद सब्दार्थ व्यंगिकै और द्वादस भेद अर्थ रूप व्यंगि ध्वनिकौ और एक भेद सब्दार्थ मूल व्यंग ध्वनि को सब अष्टादस भेद ध्वनि के भए।"

१४—ललितकिशोरीजी:—

"मलयगिरि को समस्त वन बाकी पवन सों चन्दन ह्वै जाय वाके कछू इच्छा नाहीं।"

१५—लल्लूलालजी:—

"महाराज इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मण ने रो-रो बहुत सी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला। निदान श्रीकृष्णचन्द के पास बैठा सुन सुन घबड़ाकर अर्जुन बोला कि हे देवता तू किसके आगे यह बात कहे है और क्यों इतना खेद करै है। इस सभा में कोई धनुर्धर नहीं जो तेरा दुख दूर करै आजकल के राजा आपकार्यी हैं पर दुःख निवारण नहीं जो प्रजा को सुख दें और गौब्राह्मण की रक्षा करैं। ऐसे सुनाय अर्जुन ने पुनि ब्राह्मण से कहा कि देवता अब तुम जाय अपने घर निश्चिन्त हो बैठो।"

१६—सदलमिश्र :—

"कुंड में क्या अच्छा निर्मल पानी जिसमें कमल के फूलों पर भौंरे गूंज रहे थे तिसपर हंस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द बोलते आसपास के गाछों पर कुहू कुहू कोकिलैं कुहक रहे थे जैसा वसंत ऋतु का घर ही होय।"

१७—जानकीप्रसाद :—

"बालक जैसे पग सों दाबि पङ्क कहे कीचको पेलिके पातालको पठावत है तैसे ये (गनेश जी) कलुप जे पाप हैं तिनका पठावत हैं। इहाँ गजराज को त्याग करि बालक सम यासों कह्यो पद्मिनी पत्रादि तोरन में बालक का उत्साह रहत है गणेश जू को विपत्यादि विदारण में बड़ा उत्साह रहत है कौतुक ही विदारत हैं॥"

१८—पद्माकर कविः—

"तातें हमारी तुम्हारी प्रीति की रीति अनुचित है तब काग कही कै भो मित्र हिरन्यक मैं तेरो कह्यौ उपदेस सब सुन्यौ तो भी मेरे मन ये ही बिचार है कै तो सों प्रीति करौं नाहीं तो तेरे बिल के द्वारे उपास करि करि प्रान छोड़ूगौ यह मैं निहचै करि चुक्यौ काहे तै कै तोसो चतुर तो सो मतिमान और दूजौ कौन कों कहाँ पाय हों जासों प्रीति करों तातें मित्र रहित जो मैं हों ताकौ मरि जायबो ही सलाह है...... ।"

१९—सरदार कविः—

"या रसिक प्रिया के पढ़े रति मति अति बढ़ै और सब रस विरस कहा नव रस तिनक रीति जाने और स्वारथ कहा या के पढ़े चातुर्यता लहै तब सब राजा प्रजा को बल्लभ होय या भांति तो स्वारथ लहै और श्रीकृष्ण राधा का वर्णन है याते तिनके ध्यान को परमारथ लहै याते रसिक प्रिया की प्रीति ते दोऊ बातें सिद्ध होही ॥"

२०—राजा शिवप्रसादः—

"बहुत सी रानियाँ बनाना यही आगे मानों सारे सुख का मूल समझा गया था महाभारत में एक एक राजा की हजारों रानियां लिखी हैं कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़ाई की रात को भी देखो पांडवों के सेनापति धृष्टद्युम्न के पलंग के गिर्द कितनी रानियां बैठी हैं हमारी समझ में यही स्त्रियों की बहुतायत बहुतों के विरक्त होकर जंगल में चले जाने का कारन हुई और इसी बहुतायत के कारण स्त्री जो पुरुष का अर्धांग है कवियों ने निन्दनीय ठहरायी...... ॥"

२१—राजा लक्ष्मणसिंहः—

"इस मृग ने हमको बहुत थकाया है देखौ कभी सिर झुकाये रथ को फिर फिर देखता चौकड़ी भरता है कभी तीर लगने के डर से सिम-टता है अब देखो हांफता हुवा अधखुले मुख से घास खाने को ठिठका है

फिर देखो कैसी छलांग भरी है कि धरती से ऊपर ही दिखाई देता है। देखो अब इतने वेग से जाता है कि दिखाई भी सहज नहीं पड़ता ॥"

२२—स्वामी दयानन्द सरस्वती:—

"राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार का एक यान यन्त्र-कलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोस और एक घण्टे में साढ़े सत्ताइस कोस जाता था वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते।"

२३—प्रतापनारायण मिश्र:—

"उन्हें समझना चाहिए कि कुछ न हो तथापि उनके द्वारा अपना समय नष्ट होता है जिसकी हानि लाखों द्रव्य और वर्षों के परिश्रम से भी पूरी नहीं हो सकती अस्मात् ऐसे कार्य भी जो स्थूल दृष्टि से भले वा बुरे नहीं जान पड़ते वस्तुतः बुरे ही हैं और सदाचारियों के पक्ष में त्यागने ही योग्य हैं किन्तु कष्ट और हानि का पूर्ण ज्ञान भी प्रत्येक व्यक्ति को नहीं होता है एक समुदाय जिस बात में अपनी क्षति समझता है दूसरा उसी में वृद्धि मानता है जैसे कि बहुत से पढ़े लिखों की समझ में जाति भेद और खाद्याखाद्य इत्यादि का विवेक मिटा देना ही उन्नति का मूल है........।"

२४—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र:—

(अ) "यदि ईश्वर में उत्पत्ति कर्त्तृत्वादि ऐश्वर्य साहजिक है तो यह भी एक प्रकार का विकार हुआ उसका निवारण करते हैं कि प्रकृति को ईश्वर विकृत करके उत्पत्ति आदि करता है जैसे मायावी अपनी माया से अन्य वस्तुओं में विकार कर देता है परन्तु आप विकार नहीं

पाता अर्थात् ईश्वर दुग्ध के कार्य की भाँति विकृत नहीं होता वरंच सुवर्ण के विकार की भाँति और उसमें जीव सत्व जो वर्त्तमान रहता है वह माया से परे है।"

(इ) "स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया (ऊपर देखकर) क्या कहा "गया भी ऐसा कि फिर न बहुरैगा।" अरे कौन कौन ने क्या कहा ? वही जिसका सबेरे से तुम पचड़ा गा रहे हो। हाय ! हाय महाराज ! अरे क्या हुए, गद्दी से उतारे गये ? हाय महा अनर्थ हुआ।"

अब पाठक नीचे के अवतरणों को ध्यान से देखें; इनमें विराम-संकेतों का प्रयोग यथेष्ट मात्रा में किया गया है।

१—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीः—

"इस अभाव (पुरातत्त्व के) ने हमारी बहुत बड़ी हानि की है। इसने तो हमें अन्धा सा बना दिया है। हम अपने आपको भूल सा गये हैं; हमें अपने पूर्वजों के बल और विक्रम, विज्ञता और विद्वत्ता, कलाकुशलता और पौरुष आदि लोकोत्तर गुणों का विस्मरण सा हो गया है। घटना-चक्र में पड़कर हम कुछ के कुछ हो गये हैं, हम हनीबाल और सीपियों के गुणगान करते हैं, हम सीज़र और सलार्दीन की प्रभुता के पद्य सुनाते हैं, हम जरक्सीज और अलेकज़ण्डर की चरितावली का कीर्तन करते हैं ! यहाँ तक कि हम गाल और केल्ट, नार्मन और सैक्सन लोगों की वंशावलियाँ तक कण्ठाग्र सुना सकते हैं ! पर, हाय ! हम अपने चन्द्रगुप्त और अशोक के, अपने समुद्रगुप्त और स्कन्दगुप्त के, अपने शतकर्णी और पुलकेशी के, अपने हर्ष और अमोघवर्ष के इतिहास की मोटी मोटी बातें तक नहीं जानते। जिसके चलाये हुए संवत् का प्रयोग हम, प्रति दिन, करते हैं और जिसका उल्लेख हमें, धार्मिक कृत्य करते समय, संकल्प तक में करना पड़ता है वह हमारा शकारि विक्रमा-दित्य कब हुआ और उसने इस देश के लिए क्या क्या किया, यह तक

हम ठीक ठीक नहीं जानते ! इस आत्म-विस्मृति का भी कुछ ठिकाना है ! विदेशी वंशावलियाँ रटनेवाले हमारे हज़ारों नहीं, लाखों युवकों को यह भी मालूम नहीं कि इस कानपुर के आसपास का प्रान्त, हज़ार पाँच सौ वर्ष पहले, किन किन नरेशों के शासन में रह चुका है। मौखरी वंश के महीपों की भी सत्ता कभी यहाँ थी, यह बात तो उनमें से शायद दो ही चार ने सुनी हो तो सुनी हो। फिर भला इनसे कोई यह आशा कैसे कर सकता है कि ये शिशुनाग और आन्ध्र भृत्य, चोल और पाण्ड्य, पाल और परमार, हैहय और चालुक्य वंशों के इतिहास की कुछ भी विशेष बातें बता सकेंगे।"

२—पं० बदरीनारायण चौधरी:—

"निदान उस देववाणी वा वेदभाषा त्रिपथगा की इहलौकिक धारा वैदिक अपभ्रंश-प्राकृत-गंगोत्तरी से, जो आर्ष प्राकृत नाम्नी गङ्गा बही, तो जैसे सुरसरिता क्रमशः अनेक नाम और रूप धारण करती कोड़ियों नदी नद को अपने में लीन करती, भारत भूमि के प्रधान भागों को उपजाऊ बनाती, सैकड़ों शाखाओं में बँटकर समुद्र से जा मिली और जैसे गङ्गोत्तरी से चलकर प्रयाग तक जाह्नवी अपनी श्वेतधारा और सुधा स्वादु सलिल के रूप और गुण को स्थिर रख सकी, किन्तु यमुना से मिलकर वर्ण में श्यामता और गुण में वातुलता ला चली; उसी प्रकार आर्य प्राकृत भी हिमालय से लेकर कुरुक्षेत्र तक आते अपने रूप और गुण को स्थिर रख सकी।"

३—पं० श्रीधर पाठक:—

"हम अपने को 'हिन्दू' बड़े अभिमान के साथ कहते हैं और बहुत काल से कहते आये हैं। क्या एक यही बात 'हिन्दू' और 'हिन्दी' शब्दों को हमारे निकट समादरणीय सिद्ध करने के लिए पुष्ट प्रमाण नहीं है? संशोधक समुदाय 'हिन्दी' के स्थान में 'आर्यभाषा' का प्रयोग

करते हैं। कुछ क्षति नहीं, करें, 'आर्यभाषा' ही नहीं बल्कि 'नागरीभाषा', 'भारतभाषा' या और भी कोई हिंदी के पर्यायवाची शब्द यदि मिल सकें तो कभी उपयुक्त रीति से उन्हें भी चाहे तो व्यवहार में लावें, परन्तु 'हिन्दी' शब्द के बहिष्कार में प्रवृत्त न हों, क्योंकि इसकी कोई युक्ति संगत दिखाई नहीं देती। और यदि यह शब्द सर्वथा हमारी हीनता का द्योतक है और नीच है तो क्या हम इसकी शुद्धि करके अपनी भाषा में नहीं मिला सकते?"

४—पं० गोविन्दनारायण मिश्रः—

"साहित्य की व्याख्या अब तक नवीन प्राचीन चिन्ता-शील मर्मज्ञ अनेकों सुरसिक वरों ने की है। कोई कहते हैं कि साहित्य स्वर्ग की सुधा है। यह किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं, रचयिता की भी निज की सम्पत्ति नहीं, कोई कहते हैं—"स्त्री-पुरुषों की विचारशक्ति को पुष्ट कर, और विवेक बुद्धि का गँठजोड़ा बाँध, सार्वजनिक कर्तव्य-बुद्धि, और सद्गुणों सहित शील-सम्पन्न बनाने के साथ ही मनुष्यों के मन को सर्वोत्कृष्ट अपूर्व अलंकारों से अलंकृत कर, अपूर्व रसास्वादन का आनन्द उपभोग कराने के अद्वितीय साधन का नाम ही साहित्य है।"

५—बा० श्यामसुन्दरदासः—

"हम लोगों ने सोचा था कि जिस पंचनद प्रदेश में हमारे महर्षि पवित्र वेदों के द्वारा अनेक तत्त्वों का उद्घाटन कर साक्षात् कृतधर्मा कहलाये थे, जहाँ से आदि सभ्यता समस्त भारतभूमि में पल्लवित होकर फैली थी, जहाँ भारतभूमि के भाग्य का कई बेर निपटारा हुआ था, जहाँ कर्मवीर गुरु गोविंदसिंह ने एक नई शक्ति का संचार कर अन्याय शासन की अस्थिरता प्रमाणित की थी, जहाँ रणजीतसिंह की धीरता और संगठन-शक्ति ने सिक्ख सम्प्रदाय में वह अदम्य उत्साह और दुर्दम-नीय वीरता भर दी थी, जिससे इस युग में भी भारत माता का मुख उज्ज्वल

और उसकी कीर्त्तिकौमुदी चिरस्थायिनी और दिग्व्यापिनी बनी है, और जहाँ स्वामी दयानंद सरस्वती ने मृतप्राय समाज के शरीर में नई संजीविनी शक्ति का संचार कर लोगों को नये उत्साह, नये उद्योग, नये भाव, नये विचार तथा नई अभिलाषाओं का भाण्डार बनाया था, उसी प्रदेश की राजधानी में हमारा सम्मेलन होगा ····।"

६—श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डन:—

"हिन्दी भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, किस वाणी के महा स्रोत से उसकी धारा बहती हुई हम तक आई, मार्ग में किन पर्वतों और बनों के प्राकृतिक रत्नों को अपने साथ लेती और कहाँ कहाँ उनको छिपाती आई है, अथवा किस प्रकार से उसने अपने निर्मल जल कूलों पर कुञ्ज-लताएँ पोषित कर और उन कूलों के निवासियों को अपने पवित्र जल से मानसिक जीवन-दान दे उन्हें सभ्य बनाया, इसकी चर्चा आपको कतिपय खोजसम्बन्धी ग्रंथों में और सम्मेलन के कुछ मेरे पूर्ववर्त्ती सभापतियों के भाषणों में मिलेगी। ······आर्यों का आदिम स्थान कौन था, आर्यों का आदिम स्थान क्या भारतवर्ष के बाहर था, क्या उसी स्थान से उनकी कई शाखाएँ पूर्व और पश्चिम की ओर निकलकर फैलीं, और वे जहाँ जहाँ गये अपने साथ अपने आदिम स्थान की प्राचीन आर्य भाषा लेते गये, जिसके ही कारण योरप की भाषाओं—जैसे, यूनानी, लैटिन, अँगरेज़ी, फ्रेंच, जर्मन—में भी आज हमारे देशों से कुछ समानता दिखाई पड़ती है, अथवा क्या भारतवर्ष से ही सभ्यता और भाषा की लहर पश्चिमीय देशों में गई—इस विषय पर इतिहास और भाषा के उच्च कोटि के पण्डित पिछले लगभग १०० वर्षों से विचार करते आए हैं, और अब भी यह नहीं कहा जा सकता कि इन विचारों का अंतिम निष्कर्ष निकल चुका।"

इन दोनों प्रकार के उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

एक तो यह कि बाबू हरिश्चन्द्र के पूर्ववर्ती लेखक विराम-संकेतों में केवल पूर्ण विराम ही का प्रयोग करते थे। दूसरी बात यह कि विराम-संकेतों की सहायता न लेने के कारण उन लेखकों को अपने जटिल भावों को सुबोध भाषा में प्रकट करने में विशेष असुविधा होती थी। उनके वाक्य बहुत सीधे और सरल होते थे। विचारों की जटिलता को, उनकी पेचीली गुत्थियों को व्यक्त करने में उनकी भाषा असमर्थ होती थी। इसीलिए उस समय का गद्य बहुत ही साधारण श्रेणी का होता था। उसमें कोई विशेषता नहीं है। लेकिन गहन विचारों की परस्पर गुँथी हुई शृंखला को उसके अनुकूल ही सुगठित गद्य में प्रकट करने के लिए मिश्रित वाक्य रचना की आवश्यकता का अनुभव लेखकों को होने लगा। दूसरी श्रेणी के लेखकों को—जिनमें द्विवेदीजी, गोविन्दनारायण मिश्र और टंडनजी विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं—मिश्रित वाक्य रचना की शरण लेनी पड़ी। इनके लेखों में विराम-संकेतों का ख़ासा जमघट है। जटिल विचार को जैसा का तैसा भाषा में व्यक्त करने के लिए विरामों से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। जैसे हिन्दी में, वैसे ही अँगरेज़ी में प्रतिभाशाली गद्य-लेखक अपनी कृतियों में विराम-चिन्हों का स्वच्छन्दता के साथ प्रयोग करते हैं। बर्क के ग्रन्थों को जिन लोगों ने पढ़ा है वे समझ सकते हैं कि मिश्रित वाक्य से रंजित गद्य कितना ओजस्वी और मर्मभेदी हो सकता है।

इस सम्बन्ध में पंडितप्रवर गणेशविहारी मिश्र, श्यामाविहारी मिश्र तथा शुकदेवविहारी मिश्र की यह सम्मति उल्लेखनीय है:—

"इनके (विराम चिन्हों के) व्यवहार से अर्थ समझने में बहुत स्थानों पर सुगमता होती है । परन्तु बिलकुल अँगरेज़ी ढंग से इनका लिखना हमें आवश्यक नहीं समझ पड़ता । अँगरेज़ी में विराम-चिन्हों का प्रयोग बहुत अधिकता से होता है और अर्थ व्यक्त करने में उनकी सर्वत्र आवश्यकता नहीं होती । उन सबको हिन्दी में प्रचलित करना अनावश्यक समझ पड़ता है । भारतेन्दुजी भी अँगरेज़ी भाषा के ज्ञाता थे, परन्तु फिर भी उन्होंने अपने विराम-चिन्हों को उसके अनुसार नहीं रक्खा । इससे उनका मत भी यही समझ पड़ता है ।" (तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण, दूसरा भाग पृ० ११, १२ ।) इसके पहले मिश्रबंधुओं ने भारतेन्दुजी के सम्बन्ध में यह लिखा है:—"विराम चिन्हों का आप प्रयोग तो करते थे, परन्तु पूरे तौर पर नहीं । आपके लेखों में विराम-चिन्ह सर्वत्र अँगरेज़ी नियमों के अनुसार नहीं हैं, परन्तु अपने से पहलेवाले लेखकों की अपेक्षा आपने बहुत अधिक विराम-चिन्ह लिखे हैं ।" इन उद्धरणों से हिन्दी के उन लेखकों के मत का, भारतेन्दुजी के विराम-चिन्हों के प्रति व्यवहार से, खण्डन हो जाता है, जो आजकल के ज़माने में भी गद्य में पूर्ण विराम को छोड़कर अन्य संकेतों के बहिष्कार का झंडा उठाना चाहते हैं । रही मिश्रबन्धुओं की यह सम्मति कि अँगरेज़ी ढंग से विराम-चिन्हों का अधिकता से प्रयोग अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए सर्वत्र आवश्यक नहीं है, सो इसका उत्तर देने की हमें कोई ज़रूरत नहीं मालूम होती । मिश्रबन्धुओं की गद्य-शैली ऐसी है कि उसमें केवल दो-तीन विराम-संकेतों से काम आसानी से निकल जाता है ।

लेकिन यदि वे द्विवेदीजीकृत 'मिल की लिबर्टी' या 'स्पेन्सर की शिक्षा' का अनुवाद पढ़ें तो उन्हें मालूम हो जायगा कि विराम-संकेतों का न्यूनाधिक प्रयोग विषय और शैली पर निर्भर है। इस सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं की तरह निश्चित रूप से नियम के निर्धारण से काम नहीं चल सकता। पं० पद्मसिंहजी के 'पद्मपराग' में संगृहीत निबन्ध एकदम से पहेलियों का रूप धारण कर लें, यदि उनमें से "बहुत अधिकता" से प्रयुक्त विराम-चिन्ह, मिश्र-बन्धुओं के मत के अनुसार, हटा दिये जायँ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे पाठकों को यह भली भाँति मालूम हो गया होगा कि विराम-संकेत का विषय बच्चों का खेल नहीं, किन्तु उलझनों से भरा हुआ है। अतएव, लेखकों को इनके प्रयोग के नियमों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। मुख्य विराम-संकेत सात हैं:—(१) अल्प विराम, (२) अर्द्ध विराम, (३) दीर्घ विराम, (४) पूर्ण विराम, (५) प्रश्न-सूचक, (६) विस्मय-सूचक या सम्बोधन और (७) आदेशक। इनमें से तीन, यानी पूर्ण विराम, प्रश्न तथा विस्मय का प्रयोग इतना स्पष्ट है कि इनके प्रयोग में भूल करना लेखक की असावधानता के कारण सम्भव है। ऐसी अवस्था में शेष चार के सम्बन्ध में यह सोचना कि दो-चार मोटे नियमों को याद कर लेने से संकेतों के प्रयोग में सफलता प्राप्त हो जायगी, स्वाभाविक जँचता है। परन्तु बात इतनी आसान नहीं है, क्योंकि इस विषय के अन्तर्गत बहुत-सी स्थायी और अस्थायी कठिनाइयाँ सन्निहित हैं। अस्थायी कठिनाइयाँ दो प्रकार की हैं। एक तो दीर्घ विराम (:) का प्रयोग

अँगरेज़ी में भी दिन-दिन घट रहा है; और हिन्दी में इसका प्रयोग अनुचित होगा, क्योंकि विसर्ग और दीर्घ विराम में, समानता के कारण, धोखा होने की सम्भावना है। दूसरा अस्थायी कारण यह है कि आदेशक का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है, क्योंकि विराम-संकेतों की कला से अनभिज्ञ लेखक को आदेशक के द्वारा झंझटों से सहज में ही छुटकारा मिल जाता है। और इसके द्वारा भाव विकार का व्यक्त करना सुगम मालूम होता है।

यदि हम इन विराम-संकेतों पर ध्यान-पूर्वक विचार करें तो हमें मालूम होगा कि मुख्य संकेत चार ही हैं, अर्थात् (,) (;) (:) (।)। क्योंकि (?) और (!) ये दो भाव या तो ध्वनि-सूचक हैं, या विराम-सूचक। पहले चार में परस्पर सम्बन्ध ठहराव की अवधि का है। अल्प विराम (,) के बाद उतनी देर रुकना आवश्यक है जितनी देर एक के कहने में लगती है। इसी तरह अल्प विराम से अधिक अर्द्ध विराम पर, अर्द्ध विराम से अधिक दीर्घ विराम पर, और दीर्घ विराम से अधिक पूर्ण विराम पर क्रमशः ठहरना चाहिए। इतना कहना तो सहज है, लेकिन विचार करते ही नियम-पालन की कठिनाईं प्रत्यक्ष हो जाती हैं। ठहरने की अवधि में भेद से पाठक पर कई प्रकार के भेदों को लेखक को व्यक्त करने की चेष्टा करनी पड़ती है। इसके द्वारा एक तो लेख के विभिन्न वाक्यों और वाक्यांशों के पारस्परिक क्रम और सम्बन्ध को स्पष्ट करना पड़ता है, जो व्याकरण के नियमों के अनुसार, निश्चित रहता है। साथ ही, इन्हीं संकेतों के द्वारा गाने का नियमन, ध्वनि

के चढ़ाव-उतार की सूचना तथा वाक्य के किसी अंश या शब्द पर ज़ोर देने का काम लिया जाता है। हम उस लेखक के मत से सहमत नहीं हैं, जिसकी सम्मति में, "वाक्य के किन्हीं शब्दों पर कम या अधिक ज़ोर देकर रुकना वाग्मिता और हृदयस्थ उद्वेग पर निर्भर है, परन्तु विराम-संकेत शब्दों और वाक्यों के परस्पर सम्बन्धों की विभिन्नता के अनुसार प्रयुक्त होते हैं,—अथवा, पारस्परिक क्रम और व्याकरण के सिद्धान्तों पर वे अवलम्बित हैं। नीचे के दो वाक्यों में:—

(१)—राम ने रावण को बाण से मारा।

(२)—राम ने रावण को, तीर से, मारा।

व्याकरण की दृष्टि से कोई भेद नहीं है; किन्तु वाग्मिता या प्रभाव की दृष्टि से इन दोनों में बहुत बड़ा भेद है। (१) में केवल एक घटना का शुष्क वर्णन है। (२) में अल्प विराम के द्वारा तीर के ऊपर विशेष ज़ोर डाला जाता है।

इसी तरह से नीचे के दो उदाहरणों में युक्ति-सिद्ध प्रयोग की दृष्टि से दोनों ही में अल्प विराम या अर्द्ध विराम का प्रयोग समुचित ठहरेगा। लेकिन अर्द्ध विराम का प्रयोग करनेवाला अपने वाक्यों को धीर-गम्भीर और बलशाली बनाने की चेष्टा करता है। अल्प विराम का व्यवहार करने वाला लेखक अपने वाक्यों में धारावाहिक गति अथवा नैसर्गिक अनुकूलता व्यक्त करने का उत्सुक मालूम होता है। यथा—

(१)—"कवि, व्यभिचारी और चोर सुवर्ण की खोज में रहते हैं।"

(२)—"कवि शब्दों में सुवर्ण की तलाश करता है, चोर धातुओं में, और व्यभिचारी नारी के रूप-लावण्य में।"

वाक्यों में भोंड़ी या अश्लील बात न होनी चाहिए; खींचतान और बनावट भी न रहनी चाहिए; शब्दों की क्लिष्टता या अर्थों में दुरूहता का अभाव भी वांछनीय है। यह प्रत्यक्ष है कि ऊपर के उदाहरणों में जो भेद है, वह केवल ध्वनि का भेद है; युक्ति का भेद नहीं है। ऐसी दशा में विराम-संकेतों की सर्वाङ्ग-पूर्ण शैली का आविष्कार करना आवश्यक होगा, जिसमें ध्वनि या भाव के अनन्त भेदों को व्यक्त करने के लिए एक नियमित प्रणाली अलग हो और व्याकरण-सम्बन्धी संकेत भिन्न हों। लेकिन जब तक इस तरह की शैली का आविष्कार नहीं होता तब तक पाठक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन दोनों भेदों के कारण विराम-संकेतों का प्रयोग बहुत कुछ प्रभावित होता है। इतना ही नहीं, किन्तु यदि वाग्मिता के प्रभाव को एकदम से हटाने में हम समर्थ भी हो जायँ तब भी केवल चार प्रधान संकेतों के द्वारा वाक्यों के परस्पर सम्बन्ध को पूर्ण रूप से स्पष्ट करने में सफल नहीं हो सकते। अल्प विराम एक है, लेकिन अनेक प्रकार की सेवाएँ उससे ली जाती हैं। और उसकी सब सेवाओं का समान मोल नहीं होता। एक तीसरी कठिनाई यह और भी है कि न केवल एक ही विराम से बहुत से काम लिये जाते हैं; बल्कि वही काम भिन्न अवस्थाओं में लिया जाता है। विराम-संसार में, एक लेखक द्वारा न केवल पुरुषों ही के लिए किन्तु औरतों के लिए भी, बहु-विवाह की प्रथा उचित ठहराई गई है।

इसके पहले कि हम भिन्न विराम-संकेतों के सम्बन्ध में कुछ लिखें, इस सम्बन्ध में हम दो अँगरेज़ी लेखकों के शब्दों में तीन बातों की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। पहली बात यह है कि विराम-चिन्हों का मुख्य कार्य है शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों और पदों के परस्पर, व्याकरण की रीति के अनुसार, सम्बन्ध का स्पष्टीकरण; लेकिन इसे भी न भूल जाना चाहिए कि गति का नियमन, शब्द-विशेष पर ज़ोर देना, और उनके अर्थ-गौरव को स्पष्ट कर देना तथा भाव-विशेष को ध्वनित करना भी है। ये बातें गौण हैं, और मुख्य उद्देश्य को इनके कारण बलिदान न करना चाहिए। किन्तु व्याकरण-जनित सम्बन्ध कई प्रकार से प्रायः प्रकट किया जा सकता है। अतएव, हमें लिखने के लिए वह ढंग उपयुक्त होगा जिससे गौण उद्देश्य की सिद्धि में भी विशेष सहायता हो। दूसरी बात यह है कि जितने कम विराम-संकेतों से हमारा काम निकल सके उतने ही कम से हमें काम चलाना चाहिए। तीसरा विचारणीय सिद्धान्त यह है कि लेखक को विरामों ही पर निर्भर न रहना चाहिए। वे तो वाक्य-शैली के अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए केवल साधनमात्र हैं। इनके कारण लेखक अपने इस दायित्व से नहीं बच सकता कि वह अपने वाक्यों को स्वाभाविक, क्रमबद्ध शृंखला के रूप में व्यक्त करे।

इस सम्बन्ध में पूर्ण विराम का अत्यधिक प्रयोग भी अनुचित है। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने साहित्यिक जीवन के अंतिम काल में पूर्ण विराम से अत्यधिक स्नेह करने लगे थे। सरल, सुबोध भाषा लिखना स्तुत्य है। पर सीमा को उल्लंघन करना भाषा को

बनावटी स्वरूप देना है। उदाहरण के लिए एक लेखक का निम्न लेखांश दिया जाता है:—

"आकाश में पूर्ण अवकाश था।

"अपरिमित ज्वालाग्राही द्रव सत्व संग्रह हो रहे थे।

"प्रतिक्षण वे वृद्धिङ्गत होती थीं।

"दूर से देखने में मनोमोदक थीं।

"सर्प-सौन्दर्य की तरह वे अतिशय मनोमोदक थीं।

"मूढ़ श्वेत-दर्प ने देखा।

"और हँसकर कहा—

"क्या मनोरम कुदरत का खेल है।

"उसने सत्वों के मूल अवयवों को एकत्रकर अपना अवकौशल समाप्त किया।

'दुर्धर्ष क्षोभ हुआ।"

"आरक्त पीत ज्वाला की लहरें दीख पड़ीं।

विक्टर ह्यूगो की तरह इन लेखक महोदय ने विराम-चिन्हों के झंझटों से छुटकारा पाने के लिए प्रत्येक वाक्य को अनुच्छेद (पैराग्राफ़) का रूप दे दिया है। शायद इसको लोग कला की कुशलता कहें। पर यह प्रणाली दमे से पीड़ित रोगी की बातचीत के ढंग का अक्षरशः अनुसरण है। नवीनता की खोज में, विचित्रता के पुजारी अपने को हास्यास्पद बनाते हुए नहीं झिझकते, लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि सूत्रों का ज़माना गुज़रे हुए मुद्दतें बीत गईं।

जहाँ एक ओर प्रत्येक वाक्य को स्वतंत्र अनुच्छेद बनाने की दूषित प्रणाली है, वहाँ दूसरी ओर पूर्ण विराम के अतिरिक्त शेष संकेतों के बहिष्कार की प्रथा भी अनुचित है। उदाहरण के लिए

स्वर्गीय पं० गोविन्दनारायण मिश्र का यह निम्नलिखित वाक्य हम उद्धृत करते हैं:—

"मैं भी इन विद्वानों के स्वर में अपना स्वर मिला यही कहता हूँ कि शरदपूनो के समुदित पूरन चन्द्र की छिटकी जुन्हाई सकल मनभाई के भी मुँह मसि मल, पूजनीय अलौकिक पद-नख-चंद्रिका की चमक के आगे तेजहीन मलीन और कलंकित कर दरसाती, लजाती, सरस सुधा धौलि अलौकिक सुषमा फैलाती अशेष मोह जड़ता प्रगाढ़ तम-तोम सटकाती, मुकाती निज भक्त जन मन वांछित वरामय भक्ति मुक्ति सुचारु चारों मुक्त हाथों से मुक्ता लुटाती सकल कला आलाप कल कलित सुललित सुरीली मीड़ गमक झनकार सुतार तार सुर ग्राम अभिराम लसित बीन प्रवीन पुस्तकाकलित मखमल से समधिक सुकोमल अति सुन्दर सुविमल लाल प्रवाल से लाल लाल करपल्लव बल्लव सुहाती विविध विद्या विज्ञान सुभ सौरभ सरसाते बिकसे फूले सुमन प्रकास हास-बास बसे अनायास सुगंधित सित बसन लसन सोहा सुषमा विकसाती सुविमल मानस विहारी मुक्ताहारी नीर-क्षीर-विचार सुचतुर कवि कोविद राज-राज हिय सिंहासन-निवासिनी मन्दहासिनी त्रिलोक-प्रकासिनी सरस्वती माता के अति दुलारे प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम अनोखी अतुल बलवाली परम प्रभावशाली सुजन मन-मोहिनी नवरस भरी सरस सुखद विचित्र वचन-रचना का नाम ही साहित्य है।"

मिश्रजी के उक्त अवतरण के लगभग १८० शब्दों के वाक्य में चार अल्प विराम और एक पूर्ण विराम है। स्वर्गीय मिश्रजी हिन्दी के दंडी थे, सामर्थ्यवान् थे, और प्रतिभा-सम्पन्न थे। उनकी नक़ल करना साधारण लेखक के लिए धृष्टता होगी। लेकिन इस वाक्य में भी यदि उन्होंने शब्द-बाहुल्य के साथ ही विराम-चिह्नों के प्रयोग में आव-

श्यकता से अधिक कंजूसी न की होती, तो पाठकों को उनके भावों के समझने में अधिक सुगमता होती। एक और भी विचारणीय बात है। पहले ४६ शब्दों में स्वर्गीय मिश्रजी ने ४ अल्प विरामों का प्रयोग किया है। इसके बाद, मानों, उनका अल्प विरामों का भंडार शून्य हो गया, इसीलिए शेष लगभग १४० शब्दों के बीच में उन्होंने फिर और किसी विराम-चिह्न का प्रयोग नहीं किया, अल्प विरामों की कौन चलावे। इस वाक्य को अनेक बार ध्यानपूर्वक पढ़ने ही पर, पाठक इसके अर्थ को हृदयंगम कर सकते हैं। पढ़ते हुए चित्त ऊबने लगता है, आँखों में थकावट आ जाती है, और बुद्धि चकराने लगती है। इसीलिए, इस प्रणाली से हमें कोसों दूर भागना चाहिए।

तीसरी शैली का भी नीचे एक उदाहरण दिया जाता है, जिसको पढ़कर पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि अर्द्ध-विरामों का काम पूर्ण विरामों से लेना और अल्प-विरामों से प्रायः घृणा करना लेख की उपयोगिता को किसी अंश में निर्बल बना देता है।

"इसी प्रकार गद्य भाग में वर्तमान नागरी लिपि की उत्पत्ति के विषय में पंडित गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा से बढ़कर और कौन लिख सकता है। इस समय जब कि नागरी लिपि को राष्ट्रीय आसन पर बैठाने की सब ओर चेष्टा हो रही है एक ऐसे लेख की नितान्त आवश्यकता थी। क्या ही अच्छा होता यदि अन्य प्रचलित लिपियों के विषय में भी कोई लेख लिखा जाता और उनका स्पष्ट सम्बन्ध नागरी लिपि से दिखाया जाता तथा प्रत्येक के इतिहास पर पूरा पूरा विचार किया जाता। निस्संदेह पंडित केशवदेव शास्त्री का लेख इस अभाव की बहुत कुछ पूर्त्ति करता है और अपने ढंग का एक अमूल्य प्रबन्ध है जिससे बहुत कुछ

ऐतिहासिक ज्ञान होता है पर विवादग्रस्त विषय का यह वर्तमान रूप में निर्णायक नहीं हो सकता । आशा है, मेरी इच्छा की पूर्त्ति अगले सम्मेलन में हो जायगी। खड़ी बोली की कविता के विषय पर अनेक वर्षों से आन्दोलन हो रहा है और धीरे धीरे लोग इसकी उपयोगिता और आवश्यकता को स्वीकार करते जाते हैं। यह गौरव पंडित श्रीधर पाठक आदि दो चार चुने हुए विद्वानों को ही प्राप्त है कि उन्होंने इस प्रकार की कविता को अनेक गुणों से अलंकृत किया है। इस अवस्था में यह उपयुक्त ही था कि पाठकजी इस विषय पर विचार कर अपनी सम्मति को प्रकट करते।"

उपर्युक्त अंश बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० के उस "निवेदन" से उद्धृत है, जो प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण (दूसरा भाग) में प्रकाशित हुआ है। इस अंश में बाबू साहब ने लगभग २२० शब्दों का प्रयोग किया है और विराम-चिह्नों में केवल एक अल्प विराम और आठ पूर्ण विरामों से काम लेने की कृपा की है। किन्तु बाबू साहब के लेख के सम्बन्ध में किसी प्रकार की टिप्पणी करना हमारे लिए अनुचित है। क्योंकि, बाबू साहब बाबू साहब ही ठहरे! इसी सम्बन्ध में पूज्यपाद द्विवेदीजी के लेखों से हम दो उद्धरण नीचे देते हैं, जिनमें केवल पूर्ण विराम ही से काम निकालने की द्विवेदीजी महाराज ने सफल चेष्टा की है।

(१) इस माला को नल ने बड़े आदर से लिया। उसका स्पर्श करते ही उसका शरीर कंटकित हो आया। उसे उस समय यह भावना हुई कि एक छेद होने के कारण इसको मेरी प्रियतमा के अंग का स्पर्श हुआ। पर पंचसायक के सायकों से किये गये सैकड़ों छेदों को हृदय में धारण करके भी मुझे अभी तक उसके दर्शन तक नहीं हुए। मैं बड़ा ही अभागा हूँ। कुछ देर तक वह ऐसी ही चिन्ताओं में निमग्न रहा। जब

वह उस चिन्ता-समुद्र से उन्मज्जित हुआ तब, आनन्द से पुलकित होकर, अपने नित्याजि मित्र उस हंस को उसने हृदय से लगा लिया। माँगने से कल्पवृक्ष माँगी हुई चीज़ देता है और चिंतामणि चिंतन करने पर चिन्तित पदार्थ को पास पहुँचाता है। परन्तु तुमने विना प्रार्थना और चिन्ता ही के मुझे एक अलौकिक प्रियतमा-रत्न प्राप्त कराने की चेष्टा करके इन दोनों को नीचे कर दिया। इस प्रकार राजा नल उस पक्षी से कह ही रहा था कि सायंकाल का शंख बजा और उसे सायंतनी कृत्य के लिए, उठकर, उन महलों में जाना पड़ा।"

विचारणीय है कि इन पूज्य लेखक ने 'उठकर' के आगे और पीछे तो अल्प-विरामों के प्रयोग की आवश्यकता का अनुभव किया, किन्तु अधीन वाक्यों की प्रधान वाक्यों के प्रति अधीनता व्यक्त करने के लिए विराम की आपने कोई आवश्यकता नहीं समझी। इसी तरह से खण्ड-वाक्य और वाक्यांशों को भी अनुकूल संकेतों से प्रदर्शित करने का प्रयास आपने नहीं उठाया।

(२) "लक्ष्मण ने अकृत्रिम भ्रातृ-स्नेह के कारण बड़े भाई का साथ दिया। उसने राज-पाट छोड़कर अपना शरीर रामचन्द्र के अर्पण किया। यह बहुत बड़ी बात की। उसने अपनी आत्मा की अपेक्षा भी अधिक प्यारा राम-जानकी के लिए दे डाला। और यह आत्मोत्सर्ग उसने तब किया जब उसे व्याह कर आये हुए कुछ ही समय हुआ था। उसने अपने सांसारिक सुख के सबसे अच्छे अंश से हाथ धो डाला। जो सुख विवाहोत्तर उसे मिलता उसकी बराबरी चौदह वर्ष पति-वियोग के बाद का सुख कभी नहीं कर सकता। नवोढ़त्व को प्राप्त होते ही जिस उर्मिला ने, रामचन्द्र और जानकी के लिए अपने सुख-सर्वस्व पर पानी डाल दिया उसी के लिए अन्तर्दर्शी आदिकवि के शब्द-भांडार में दरिद्रता!"

इस उद्धरण में भी पूज्य द्विवेदीजी ने एक वाक्यांश के लिए, सो भी अन्तिम वाक्य में, दो अल्प विरामों का प्रयोग किया है। शेष पूर्ण विराम को छोड़कर और किसी संकेत की आवश्यकता उन्होंने नहीं समझी।

हमने ऊपर तीन लेखकों के जो उदाहरण दिये हैं, वे केवल इसलिए दिये हैं कि पाठकों को यह अच्छी तरह से मालूम हो जाय कि विचारों के परस्पर सम्बन्ध में न्यूनाधिक घनिष्टता होती है। और इस कम या अधिक घनिष्टता का ध्यान न रख केवल पूर्ण विरामों के सहारे विचारों को व्यक्त करना पाठकों के साथ अन्याय करना है। पूज्यपाद द्विवेदीजी विराम-संकेतों के विरोधियों में नहीं गिने जा सकते; किन्तु वे भी जब प्रायः विरामों का साधन छोड़ सकते हैं तो बाबू श्यामसुन्दरदास की भूल सर्वथा क्षन्तव्य है।

ऊपर के उदाहरणों के देखने से पाठकों को मालूम होगा कि ऐसे स्थलों में अल्पविराम के सम्बन्ध में जितने लेखक हैं, उतनी प्रणालियाँ। नीचे हम कुछ उदाहरण देते हैं, जिनको देखकर पाठक इस सम्बन्ध में हमारे सिद्धान्त को सहज में समझ लेंगे:—

(१) सचाई, ईमानदारी और लगन सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

(२) भौंरा फूल के रूप और रस और सुगन्ध पर लुब्ध रहता है।

(३) सीधी-सादी सच्ची बात का असर आदमी के हृदय पर अवश्य होता है।

(४) भारतवर्ष की नैपाल के साथ मैत्री, और उसके संरक्षण का भार है।

इन चार उदाहरणों में से नं० १ को लीजिए। यह चार तरह से लिखा जा सकता है:—

(अ) सचाई, ईमानदारी और लगन सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

(इ) सचाई, ईमानदारी, और लगन सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

(उ) सचाई, ईमानदारी और लगन, सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

(ए) सचाई, ईमानदारी, और लगन, सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

(ओ) सचाई ईमानदारी और लगन सफलता के लिए ज़रूरी हैं।

इनमें से (अ) में अल्प विराम का प्रयोग उचित है। शेष चार रूप अनुचित हैं। पाठक ऐसे वाक्यों में (अ) में अल्प विराम के प्रयोग की प्रणाली का अनुसरण करें तो उनसे भूल न होगी।

कभी-कभी गणनात्मक शब्दों का प्रयोग जोड़ों में होता है। ऐसी अवस्था में अन्तिम वाक्य के बाद अल्प विराम को ग़ायब कर देना खटकता है:—

राम और कृष्ण, मत्स्य और वाराह, नृसिंह और वामन ईश्वर के अवतार माने जाते हैं।

इस वाक्य में वामन के बाद अल्प विराम का होना आवश्यक है।

पाठक यह पूछ सकते हैं कि फिर किस नियम का पालन किया जाय। एक अँगरेज़ी लेखक का कहना है:—

(१) यदि संभव हो, अल्प विराम का प्रयोग ही न करना चाहिए।

(२) दूसरे अल्पविराम का प्रयोग करना और पहले को चट कर जाना अनुचित है।

(३) पहला जहाँ ज़रूरी भी है वहाँ दूसरा प्रायः अनुचित होगा।

(४) दोनों अल्प विराम आवश्यक हैं, जब वाक्यांश बड़े-बड़े हों।

इसी अँगरेज़ी लेखक के दो उदाहरण देकर इस विषय को हम समाप्त करेंगे:—

(१) "दिसम्बर २४,१९३०, को वह लन्दन में या उसके आसपास, पैदा हुआ था।

यह वाक्य कितना भद्दा है, पाठक स्वयं देख सकते हैं। जिसको अल्प विराम का हैज़ा हो वही इस तरह की भद्दी भूल करेगा।

(२) "मैं नहीं समझता कि मेरे ऊपर इस तरह के दोषारोपण करते हुए आप लोगों को लाज नहीं आती क्योंकि आप खुद सोचकर देखिए मेरे से आदमी के लिए तथा मेरी विचित्रता का यही प्रधान कारण भी है शहर से कोसों दूर एक पर्णकटी में चुपचाप अकेला पड़ा रहना आवश्यक है।"

इस तरह का वाक्य भी वही लिखेगा जिसने संसार में अल्प विरामों को समूल नष्ट कर देने का संकल्प किया हो। इसमें कम से कम तीन और अधिक से अधिक छः अल्प विरामों की खपत है। अल्प विरामों के साथ, वाक्य का निम्न रूप होगा:—

"मैं नहीं समझता कि मेरे ऊपर इस तरह के दोषारोपण करने में आप लोगों को लाज नहीं आती, क्योंकि आप खुद सोचकर देखिए, मेरे से आदमी के लिए, तथा मेरी विचित्रता का यही प्रधान कारण भी है, शहर से कोसों दूर एक पर्णकुटी में चुपचाप अकेला पड़ा रहना आवश्यक है।"

विचार-वर्गीकरण

विरामों के महत्त्व और उनकी उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ निवेदन कर चुकने के बाद अब प्रश्न उठता है कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिनका आधार लेकर एक वाक्य में, अथवा, अनेक वाक्यों के बीच हम उनका स्थान निर्दिष्ट करें। यह कहना तो बहुत कठिन है कि अमुक स्थान में अल्प विराम

होना चाहिए और अमुक स्थान में अर्द्धविराम या पूर्णविराम, अथवा, तीनों में से एक भी न होना चाहिए, किन्तु फिर भी इस तर्क को सामने रखकर कि किसी भी रचना वा लेख का अन्ततोगत्वा यही तो उद्देश्य है कि पाठक की समझ में वह, अच्छी तरह तथा अधिक से अधिक सुविधा और सुगमता के साथ आ जाय। हमारी समझ में इस विषय के कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्तों का निश्चित करना सर्वथा असम्भव तो नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, यदि एक अनुच्छेद में अनेक वाक्य हैं तो उन वाक्यों में कुछ ऐसे भी निकल सकते हैं जिनमें विचार-सम्बन्धी एकता बहुत अधिक घनिष्टता की स्थापना कर रही हो। इस सम्बन्ध को समझना आरम्भ में अनभ्यस्त लेखक के लिए थोड़े से परिश्रम की बात अवश्य है, किन्तु थोड़े ही अभ्यास से उसका ऐसा संस्कार बन जायगा कि उचित विराम के लिए उचित स्थान ढूँढ लेना उसके लिए विशेष कष्टकर नहीं रह जायगा। नीचे हम छः अवतरण देते हैं; इन्हें यदि पाठक विचार की अभिव्यक्ति की दृष्टि से देखेंगे तो शीघ्र ही उन्हें इनमें प्रयुक्त विरामों की त्रुटियाँ दिखायी पड़ जायँगी; शीघ्र ही उन्हें पता लग जायगा कि कहीं अल्प विराम के स्थान में अर्द्धविराम लगाया गया है और कहीं अर्द्धविराम की जगह पूरी पाई लगायी गयी है:—

(१) "वादों का बखेड़ा हमें अच्छा नहीं लगता। फिर भी यदि वादों के विना काम न चले तो हम दार्शनिक सिद्धातों को पहले नहीं रखेंगे, पहले रचनाओं की ओर ध्यान देंगे। काव्य-समीक्षा में दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार मानकर चलना घोड़े के आगे गाड़ी खड़ी करना

है । काव्य की उद्वेगपूर्ण उच्छृंखल भावनाएँ दार्शनिक बुद्धिवाद से जकड़ी नहीं जा सकतीं ।"—भारत

(२) "भंडारीजी हिन्दीभाषाभाषी प्रान्त के निवासी न होते हुए भी जिस लगन और अध्यवसाय से हिन्दी की सेवा में लगे हुए हैं उसका प्रमाण उनकी बनाई दर्जनों पुस्तकें हैं । उसके लिए प्रत्येक हिन्दीभाषी को उनका कृतज्ञ होना चाहिए । अभी तो नहीं, पर निकट भविष्य में जब देश में शिक्षा की वृद्धि के साथ गंभीर विषयों के अध्ययन की प्रवृत्ति अधिकाधिक बढ़ेगी तब भंडारीजी की रचनाएँ प्रेम से पढ़ी जायँगी । अभी तो नहीं, पर निकट भविष्य में जब हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रंथ की रचना होगी तब भंडारीजी उन व्यक्तियों के स्थान के अधिकारी होंगे जो राजकीय कार्यों में संलग्न रहते हुए भी, अपने समय का सदुपयोग कर ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत करने में लगे रहते हैं । '—भारत

(३) "विद्यापतिजी ने पारिजातहरण और रुक्मिणीपरिणय-नामक दो नाटक-ग्रन्थ भी बनाये हैं । विद्यापति की कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसन्द करते थे । उमापति, नन्दीपति, मोदनारायण, रमापति, महीपति, जयानन्द, चतुर्भुज, सरसराम, जयदेव, केशव, भंजन, चक्रपाणि, भानुनाथ, हर्षनाथ आदि मैथिल कवि विद्यापति की रीति पर रचना और उनकी नक़ल करते थे । हिन्दी के पहले नाटककार विद्यापति ही हैं । इन महानुभाव की रचनायें बड़ी ही सजीव, अतिमधुर, तल्लीनतापूर्ण और उमंगवर्द्धिनी हैं ।"—मिश्रबन्धु

(४) "भाषा सुगम अवश्य होनी चाहिए और बोलचाल में प्रचलित विदेशी एवं अन्य भाषाओं के शब्द उसमें ज़रूर रखने चाहिए, पर यह कदापि नहीं हो सकता कि हिन्दी साधुभाषा को एक दम तिलांजलि दे दी जाय । क्या यह सम्भव है कि विशुद्ध अँगरेज़ी भाषा को छोड़कर अँगरेज़ लोग अपने देश में असाधु भाषा (Colloquialison) का ही प्रचार रक्खें और उसीमें नामी ग्रन्थ सामयिकपत्रादि लिखे जावें ।"—मिश्रबन्धु

(५) "तल्लीनता एक भारी बल है, जिसके सम्मुख कोई भी वस्तु असंभव नहीं है। इसीके वश प्रेमीजन अपनी प्रेमिका पर पतंग की भाँति निछावर हो जाते हैं, इसीके वश योगीजन कंचन को पत्थर के ढेले की भाँति समझकर ईश्वरानन्द में निमग्न रहते हैं और कठिन से कठिन तपस्या में भी परमानन्द का अनुभव करते हैं और इसी के वश शूरवीर रणक्षेत्र में तिल-तिल अंग कट जाने पर भी मुँह न मोड़कर सहर्ष स्वर्ग-यात्रा करते हैं।"—मिश्रबंधु

(६) "फिर गोस्वामी तुलसीदासजी को छोड़कर ये सब महात्मा अपने को कवि समझते ही न थे और न कभी कवि कहते थे। ये लोग तो भजनानन्द और कृष्ण-गुण-गान के लिए ही छन्दों की रचना करते थे। छन्दरचना से उत्तम कवि कहलाने का इनका सचमुच अभिप्राय न था। पर इस अभिप्राय के न होने से भी इन महानुभावों से साहित्योन्नति बहुत अच्छी हुई और इनकी भक्ति के कारण यह समय कविता के लिए बड़ा उपयोगी हो गया।"—मिश्रबंधु

(७) "मुझे प्रेमा से जितना प्रेम है, उससे कई गुना प्रेम मेरे एक मित्र को उससे है। उन्होंने कभी उस प्रेम को प्रकट नहीं किया, पर मैं जानता हूँ कि, उनके हृदय में उसके प्रेम की ज्वाला दहक रही है। मैं भाग्य की कितनी ही चोटें सह चुका हूँ। एक चोट और भी सह सकता हूँ। उन्होंने अब तक एक चोट भी नहीं सही। यह निराशा उनके लिए घातक हो जायगी।"—प्रेमचन्द

(८) "अमृतराय ने दाननाथ को सगर्व नेत्रों से देखकर कहा—आदमी अकेला भी बहुत-कुछ कर सकता है। अकेले आदमियों ने ही आदि से विचारों में क्रान्ति पैदा की है। अकेले आदमियों के कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है। गौतम बुद्ध कौन था? वह अकेला अपने विचारों का प्रचार करने निकला था और उसके जीवन-काल ही में आधी दुनिया उसके चरणों पर सिर रख चुकी थी। अकेले आदमियों

से राष्ट्रों के नाम चल रहे हैं। राष्ट्रों का अन्त हो गया। आज उनका निशान भी बाक़ी नहीं। मगर अकेले आदमियों के नाम अभी तक चल रहे हैं।"—प्रेमचन्द

(९) "अमृतराय सिद्धान्तवादी थे—बड़े ही संयमशील। कोई काम नियम-विरुद्ध न करते। जीवन का सद्व्यय कैसे हो, इसका सदैव ध्यान रहता था। धुन के पक्के आदमी थे। एक बार कोई निश्चय करके उसे पूरा किये बिना न छोड़ते थे। वकील थे; पर, इस पेशे से उन्हें प्रेम न था। मुवक्किलों की बातें सुनने की अपेक्षा विद्वानों की मूक वाणी सुनने में उन्हें कहीं अधिक आनन्द आता था। बनाये हुए मुक़दमे भूलकर भी न लेते थे। लेकिन जिस मुक़दमे को ले लेते उसके लिए जान लड़ा देते थे।"—प्रेमचन्द

(१०) "धनानन्द के सेनापति ने एक सुदूरवर्ती राजा को पादाक्रान्त किया था और आज उसी राजा की रूपगुणसम्पन्न कन्या से विवाह करके मगधदेश का युवराज, अपनी वधू समेत, नगर-प्रवेश कर रहा था। उसीके स्वागत का आज यह अपूर्व महोत्सव रचा गया था। अब, साधारण जनता के लिए इससे अधिक और आनन्ददायक कौन महोत्सव हो सकता था ?"—लक्ष्मीधर वाजपेयी

(११) "विनोद बाबू बरामदे में खड़े होकर चिन्ता-सागर में ग़ोते लगा रहे थे। उनकी सारी सुखमय कल्पनाएँ क्षणभर के लिए हवा हो गईं। हाय, भरोस क्या कहता है, माधव, जिसे मैं बहुत ही सदाचारी और अपना विश्वास-पात्र समझता था, वही मेरे सारे सुखों पर पानी फेरने पर उतारू है, मेरी सारी मान-प्रतिष्ठा मिट्टी में मिलाना चाहता है और सरला—मेरा सर्वस्व, मेरे जीवन की ध्रुवतारा—इस तरह पतित होने जा रही है। हाय, मेरा सोने का संसार······विनोद अधीर हो उठे। पैरों के नीचे पृथिवी मानों खिसकने लगी। यह इतना बड़ा संसार मानों रसातल को धँसा जा रहा था। चन्द्रमा की सारी कलाएँ उनके

लिए कलङ्कमय प्रतीत हो रही थीं। उन्हें यहाँ तक होश न था कि मैं जागृत अवस्था में हूँ, या किसी भयङ्कर दुःस्वप्न में पड़ा हूँ।"—मोहन

(१२) व्रजभाषा में एक विशेष सिफ़त यह भी है कि इसमें हम शब्दों को स्वेच्छानुकूल बना सकते हैं। 'कृष्ण' से 'कान्ह,' 'कन्हैया,' 'कँधैया,' 'कन्हुवा' इत्यादि जैसे कोमल नाम दे देना तो इस भाषा के बाएँ हाथ का खेल है।"— लाला भगवानदीन

(१३) प्रतिभाशील कवि जनता को अपनी कविता के प्रवाह में बहा देता है! जिस रस की कविता होगी पाठक या श्रोता उसीमें बहने लगेंगे। शृंगार रस के वर्णन से सहृदय व्यक्ति का हृदय प्रेम से उन्मत्त हो जायगा, करुण रस के वर्णन से आँखें अश्रुपूर्ण हो जायेंगी, वीर रस के वर्णन से शरीर उत्साह से भर जायगा और भुजाएँ फड़कने लगेंगी, हास्य रस की कविता होगी तो हज़ार चेष्टा करने पर भी हँसी का वेग न रुक सकेगा, शान्त रस की कविता से एक अलौकिक आनन्द का अनुभव होगा। सारांश यह कि कविता के लिए प्रतिभा का होना अनिवार्य है।"—लाला भगवानदीन

(१४) "हर्ष की बात है कि सुदर्शन जी की कहानियाँ और कुछ न होकर कहानियाँ ही होती हैं। वे आदि से अन्त तक पढ़ने में भली मालूम पड़ती हैं। उनकी कुछ कहानियाँ तो मानव-चरित्र के ख़ूबसूरत चित्र हैं।" —श्रीकृष्णानन्द गुप्त

(१५) "उनकी कहानियाँ कला की दृष्टि से बहुत खोटी उतरती हैं। उनका नन्दन-निकुञ्ज यहीं तक अच्छा है कि इसकी भाषा आदि से अन्त तक एक सी भावपूर्ण और ओजमयी है। बीच में उसमें कहीं कमज़ोरी नज़र नहीं आती। किन्तु उनकी भाषा में एक बड़ा दोष है। कभी-कभी वे उसको इतना अलंकृत कर देते हैं कि उसका गला घुटने लगता है।"—श्रीकृष्णानन्द गुप्त

उक्त अवतरणों को पाठकगण ध्यान से देखें और क्रमशः

सब पर विचार करें। सबसे पहले नम्बर १ ही को लीजिए; इसमें चार वाक्य हैं और केवल अल्प विराम और पूर्ण विराम से काम निकालने की चेष्टा की गयी है। किन्तु यदि विचार-सम्बन्धी घनिष्टता देखी जाय तो इन चारों वाक्यों को इस प्रकार पृथक् कर देना खटकने लगेगा। क्योंकि, यदि प्रथम वाक्य में लेखक की 'वादों' के प्रति विरक्ति प्रकट होती है तो तत्काल ही दूसरा वाक्य हमें उस परिस्थिति की भी सूचना देता है जिसमें वह उन अप्रिय 'वादों' के साथ समझौता करने को तैयार है। सच पूछिए तो जिन दो वाक्यों में इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो उन्हें पूर्ण विराम द्वारा पृथक् कर देना पाठक के साथ अन्याय करना है, सम्पूर्ण तथ्य की जानकारी से उसे उचित से अधिक समय के लिए वंचित करना है। इन दो वाक्यों के साथ यदि हम तीसरे और चौथे वाक्य को भी ले लें तो शीघ्र ही स्पष्ट हो जायगा कि लेखक ने दूसरे वाक्य में अपना जो मत प्रकट किया है उसका औचित्य सिद्ध करने के लिए उसने तीसरे और चौथे वाक्य में अपना कारण बताया है। इसी प्रकार तीसरे और चौथे वाक्य में भी घनिष्ट सम्बन्ध है, क्योंकि लेखक ने जहाँ तीसरे वाक्य में यह कहा है कि 'काव्य-समीक्षा में दार्शनिक सिद्धान्तों को आधार मानकर चलना घोड़े के आगे गाड़ी खड़ी करना है', वहाँ चौथे वाक्य में वह अपने भाव को थोड़ा और स्पष्ट करता है, यह बताता है कि काव्य की भावनाएँ उद्वेगपूर्ण और उच्छृंखल होती हैं और उन्हें बुद्धिवाद से जकड़ना संभव नहीं। इसलिए यदि इन चारों वाक्यों को निम्नलिखित ढंग से विराम चिह्नों-द्वारा

सुगठित करें तो विचार के अधिक सुस्पष्ट और हृदयंगम हो सकने की सम्भावना है:—

"वादों का बखेड़ा हमें अच्छा नहीं लगता, फिर भी, यदि वादों के बिना काम न चले तो हम दार्शनिक सिद्धान्तों को पहले नहीं रखेंगे, पहले रचनाओं की ओर ध्यान देंगे ; काव्य-समीक्षा में दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार मानकर चलना घोड़े के आगे गाड़ी खड़ी करना है; काव्य की उद्वेगपूर्ण उच्छृंखल भावनाएँ दार्शनिक बुद्धिवाद से जकड़ी नहीं जा सकतीं।"

अवतरण नम्बर २ पर थोड़ा सा ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि यह पूरा का पूरा केवल एक ही विचार को संगठित करता है। वास्तव में जहाँ प्रथम वाक्य समाप्त किया गया है वहाँ अर्द्ध विराम होना चाहिए, क्योंकि दूसरे वाक्य में जिस कृतज्ञता का औचित्य बतलाया गया है वह प्रथम वाक्य में बताई हुई बातों से बहुत अधिक घनिष्ट सम्बन्ध रखती है। वास्तव में दूसरे और तीसरे वाक्यों के अन्त में भी पूर्ण विराम न होना चाहिए; दोनों स्थानों में अर्द्ध विराम ही अधिक उपयुक्त है, क्योंकि तीसरा और चौथा वाक्य दूसरे वाक्य के साथ वही घनिष्ट विचार-सम्बन्ध रखता है जो दूसरा वाक्य पहले वाक्य के साथ रखता है।

तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा अवतरण हमने मिश्रबन्धुओं के प्रसिद्ध ग्रन्थ मिश्रबन्धुविनोद से लिया है। यद्यपि हिन्दी के इन मर्मज्ञ विद्वानों को विराम-संकेतों का शौक़ नहीं है तो भी उनकी सेवा में हम यह निवेदन करेंगे कि अवतरण नम्बर २ के

प्रथम वाक्य को छोड़कर शेष वाक्यों के अन्त में पूर्ण विराम न रखकर यदि अर्द्ध विराम रखा गया होता तो पाठकगण इस वाक्य-समूह द्वारा व्यक्त किये जानेवाले केन्द्रिक विचार, अर्थात्, विद्यापति की काव्योत्कृष्टता को अधिक सरलता से हृदयंगम कर सकते, क्योंकि पूर्ण विराम के चक्कर में पड़कर पाठक को अभीष्ट भाव से सम्पूर्ण परिचय प्राप्त करने में व्यर्थ विलम्ब का सामना करना पड़ता है। चौथे अवतरण में तीन वाक्य हैं। प्रथम दो स्वतंत्र वाक्यों को हमारे श्रद्धेय हिन्दी-इतिहास-लेखकों ने एक अल्प विराम द्वारा जोड़ा है और दूसरे वाक्य के अन्त में पूर्ण-विराम दे दिया है। इस पर पाठक थोड़ा ग़ौर करें। इन वाक्यों में सन्निहित विचार की अभिव्यक्ति में इनका कितना भाग है और ये एक दूसरे को कितनी सहायता देते हैं, इसकी परीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि इस अवतरण के प्रथम वाक्य के अन्त में, अर्थात् 'चाहिए' के बाद और 'पर' के पहले अल्प विराम के स्थान में तथा द्वितीय वाक्य के अन्त में, अर्थात्, 'तिलांजलि दे दी जाय' के बाद पाई के स्थान में अर्द्धविराम होना चाहिए। पाँचवें अवतरण में पाठक देखेंगे कि अर्द्धविरामों की उपेक्षा करके विद्वान् मिश्रबन्धुओं ने वाक्य को बिलकुल भद्दा बना दिया है, उसमें उस उतार-चढ़ाव का अभाव हो गया है जो सबल गद्य की एक विशेषता होनी चाहिए। इस अवतरण के एक-एक वाक्य को अलग-अलग कर देने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। इसमें पाँच स्वतन्त्र और एक अधीन वाक्य है।

स्वतन्त्र वाक्य :—

(१) तल्लीनता एक भारी बल है।

(२) इसीके वश प्रेमीजन अपनी प्रेमिका पर पतंग की भाँति निछावर हो जाते हैं।

(३) इसीके वश योगीजन कंचन को पत्थर के ढेले की भाँति समझकर ईश्वरानन्द में निमग्न रहते हैं।

(४) कठिन से कठिन तपस्या में भी परमानन्द का अनुभव करते हैं।

(५) इसीके वश शूरवीर रणक्षेत्र में तिल-तिल अंग कट जाने पर भी मुँह न मोड़कर सहर्ष स्वर्ग-यात्रा करते हैं।

पहले वाक्य का अधीन वाक्य:—

जिसके सम्मुख कोई भी वस्तु असंभव नहीं है।

भावों के वर्गीकरण के साथ-साथ यदि हम यह भी स्मरण रक्खें कि दो स्वतंत्र वाक्यों का निकट सम्बन्ध सूचित करने के लिए अर्द्ध विराम तथा स्वतंत्र और अधीन वाक्य की घनिष्टता व्यक्त करने के लिए अल्प विराम के प्रयोग अनुमोदनीय हैं तो इसे ध्यान में रखकर पाठक सरलता के साथ यह समझ सकेंगे कि यदि इसी अवतरण को हम विराम-संकेतों के शुद्ध प्रयोग के साथ लिखें तो उसका निम्नलिखित स्वरूप होगा :—

"तल्लीनता एक भारी बल है, जिसके सम्मुख कोई भी वस्तु असम्भव नहीं है ; इसीके वश प्रेमीजन अपनी प्रेमिका पर पतंग की भाँति निछावर हो जाते हैं ; इसीके वश योगीजन कंचन को पत्थर के ढेले की भाँति समझकर ईश्वरानन्द में निमग्न रहते हैं और कठिन से कठिन तपस्या में भी परमानन्द का अनुभव करते हैं; इसीके वश शूरवीर रणक्षेत्र में तिल-तिल अंग कट जाने पर भी मुँह न मोड़कर सहर्ष स्वर्ग-यात्रा करते हैं।"

इसी प्रकार पाठक देखेंगे कि छठे अवतरण में उन समस्त वाक्यों के अन्त में पाई लगाई गई है, जिनमें अर्द्ध विराम लगाने से विशेष स्पष्टता आ सकती है। सातवें अवतरण में पाँच वाक्य हैं, जिनके अन्त में पाई है। इनमें से प्रथम दो वाक्यों के बीच में से पाई हटाकर अर्द्ध विराम रख सकते हैं और इसी तरह तीसरे वाक्य, अर्थात् 'मैं भाग्य की........हूँ' को 'एक चोट........हूँ' के साथ अधिक निकट ला सकते हैं। अन्तिम वाक्य के पहले की पाई भी हटाई जा सकती है।

विचार-वर्गीकरण के इस सिद्धान्त के आधार पर शेष अवतरणों में भी इसी ढंग पर पाई का बाहुल्य घटाकर विचार की अभिव्यक्ति में अधिक वैज्ञानिकता का समावेश किया जा सकता है।

वास्तव में यह विषय बड़ा जटिल है। प्रायः विषय का ज्ञान होने पर भी विपरीत अभ्यास और संस्कार लेखक को भ्रान्त पथ का अवलम्बी बना देते हैं। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने, जान पड़ता है कि इसी विवशता के कारण, निम्नलिखित अवतरण में अर्द्ध विराम के स्थान पर पाई का प्रयोग किया है :—

"अब भी उनके इस औदार्य से यदि हिन्दी में उपयोगी ग्रन्थ लिखकर लोग लाभ न उठावें तो हम यही कहेंगे कि हिन्दी के दुर्भाग्य की चिकित्सा ही नहीं हो सकती। वह बिलकुल ही असाध्य हो गया है।"

इस अवतरण में प्रथम वाक्य के अन्त में जहाँ पाई का प्रयोग किया गया है वहाँ अर्द्धविराम का प्रयोग होना चाहिए था।

विराम-संकेतों का उचित से अधिक प्रयोग

भावों को व्यक्त करने के लिए विराम-संकेतों का सहारा लेना अनुमोदनीय होने पर भी किसी लेखक को यह सम्मति नहीं दी जा सकती कि वह आवश्यकता से अधिक उनका भक्त बन जाय। यहाँ पाठकों को एक बात बता देना आवश्यक है; अनेक अवस्थाओं में वाक्य में प्रयुक्त विराम-संकेतों का स्थान और उपयोग सर्वथा उचित होते हुए भी अनुचित जान पड़ने लगता है। प्रकट रूप में यह बात बिलकुल असंगत जान पड़ेगी, लेकिन यदि हम सदैव इस बात को स्मरण रखें कि विराम-संकेत एक सीमा तक ही वाक्य की सौन्दर्य्य-वृद्धि में सहायक हो सकता है तथा उसका अतिशय प्रयोग उतना ही अप्रिय और अरुचिकर हो सकता है जितना मिष्टान्न को आवश्यकता से अधिक परिमाण में ग्रहण करना। सच बात यह है कि यदि किसी वाक्य में अल्प विरामों की बहुतायत दिखाई पड़ने लगे तो लेखक को लेखनी की गति रोककर एक बार अपनी वाक्य-रचना को सावधानी से देख डालना चाहिए। नीचे के थोड़े से वाक्यों को देखिए, इनमें अल्प विराम का प्रयोग अनावश्यक है :—

(१) "मैं, इस कारण, घर जाना चाहता हूँ।"

(२) "मैंने, शायद, नरसों के दिन, बहुत साफ़ साफ़ शब्दों में, यह बात कही थी।"

(३) "आप, इतनी दूर से, कष्ट सहकर, आये, इसलिए, यदि मेरी थोड़ी सी हानि भी हो जाय तो, मुझे आपत्ति करने का अवसर नहीं।"

पहले वाक्य में तो यदि 'इस कारण' पर विशेष ज़ोर देना हो तो उसके पीछे और पहले अल्प विराम का प्रयोग क्षन्तव्य हो सकता है; अन्यथा व्याकरण की दृष्टि से सर्वथा उचित होने पर भी इससे वाक्य के सौन्दर्य में त्रुटि-सी जान पड़ने लगती है। किन्तु दूसरे और तीसरे उदाहरण में 'शायद' के पीछे और पहले अल्प विराम का होना अखरने लगता है। ऐसी अवस्थाओं में जब अल्प विराम की उपस्थिति का व्याकरण तो समर्थन करे, किन्तु वाक्य का आलंकारिक प्रभाव उससे नष्ट होता हो, उसमें भारीपन आता हो तब लेखक का कर्तव्य है कि वह वाक्य-रचना ही में कुछ परिवर्तन करके अल्प विरामों को वहाँ से हटा दे जहाँ उनका जमघट सौन्दर्य में त्रुटि उत्पन्न कर रहा है। उदाहरण के लिए, यदि हम तीसरे वाक्य को निम्न-लिखित ढंग से लिखें तो उसके चरणों में जो पग-पग पर अल्प विरामों की साँकल बाँधी गई है उससे मुक्त होकर वह अधिक मनोहर बन जाय:—

"यह सोचकर कि आप कष्ट सहकर इतनी दूर से आये हैं, यदि मेरी थोड़ी सी हानि भी हो जाय तो, मुझे आपत्ति करने का अवसर नहीं।"

निम्नाङ्कित कतिपय अवतरणों को भी ध्यान से देखिए:—

(१) "मेरे पिता, जो मृत्यु के मुँह में प्रायः चले गये थे, कुछ दिनों बाद, अच्छे हो गये, और, जब तक, उन्होंने पौत्र के मुख चुम्बन का आनन्द नहीं लूटा, तब तक, फिर, उन्होंने काल देव का भीषण सन्देश नहीं पाया।"—अज्ञात

(२) "बनारस जाने के बारे में, उन्होंने अपने सभी कुटुम्बियों से

लड़ाई की थी, यहाँ तक कि, अपने बड़े, पूज्य, भाई से, इस ज़रा सी बात के लिए, बिगड़कर, मुँह न देखने की प्रतिज्ञा कर ली थी।"—अज्ञात

(३) "किन कारणों से, किस प्रकार से और कैसी परिस्थिति में एक बड़ा समुदाय अनेक छोटे-छोटे समुदायों में विभक्त हो जाता है या अनेक छोटे-छोटे समुदायों का, मिलकर, एक बड़ा समुदाय बन जाता है?"—सरस्वती

प्रथम दो अवतरणों में अल्प विरामों की बारात सी लग गई है। नं० १ में 'बाद' के आगे, 'जब तक,' 'तब तक,' तथा 'फिर' के पीछे और आगे जैसे पहरे तैनात कर दिये गये हैं और वाक्य की प्रगति को मुश्किल किये देते हैं। इसी प्रकार नं० २ में 'यहाँ तक कि,' 'पूज्य,' तथा 'बिगड़कर' के आगे-पीछे अल्प विरामों का घेरा डालना अखरनेवाली बात है। 'बनारस जाने के बारे में' के आगे भी अल्प विराम की कोई आवश्यकता नहीं है। नं० ३ इन दोनों अवतरणों की अपेक्षा कुछ सुधरा हुआ है। यदि 'मिलकर' के अगल-बग़ल के दोनों सींग तोड़ दिये जायँ तो वह भी पूरा पूरा सरल हो जायगा।

हिंदी में विराम-संकेतों का प्रचुर प्रयोग अभी नहीं होता। परन्तु जो कुछ होता है वह इतना अधिक अज्ञान-सूचक है कि कौन विराम संकेत कहाँ पर प्रयुक्त हो, इसकी पूर्ण विवेचना की आवश्यकता है। एक ओर यह कठिनाई है, दूसरी ओर बहुत बड़ी अड़चन इस बात की है कि विराम-संकेत बहुत थोड़े होने के कारण भिश्ती, पीर, बबर्ची, खर आदि सभी का काम प्रायः एक ही से लेने को बाध्य होना पड़ता है। लेखक को वास्तविक

सहायता तो उस संस्कार ही से मिलेगी जो उस अवस्था में सतत अभ्यास से उत्पन्न होगा जब लेखक अपने लेखन-कार्य में पग-पग पर सभी बातों के औचित्य पर विचार करने के बाद ही विराम-संकेत के प्रयोग का निश्चय करेगा। किन्तु उसको इस मार्ग पर प्रगतिशील करने के लिए कुछ बातें यहाँ लिखी जाती हैं:—

(क) जहाँ तक सम्भव हो 'इसलिए' के आगे और पीछे अल्प विराम का प्रयोग न किया जाय। साधारणतया ऐसा करने से वाक्य का भारीपन बढ़ता है और उसकी गति में बाधा पड़ती है। नीचे के दो वाक्य देखिए :—

(१) "मैं उचित समय पर रुपया दे न सकूँगा, इसलिए, मुझ पर यह चन्दा न लगाइए।"—अज्ञात

(२) "मैं बहुत कमज़ोर आदमी हूँ, इसलिए, दौड़ने से लाचार हूँ।" किन्तु निम्नलिखित वाक्य में,

"मुझे आज क्षण भर का अवकाश नहीं है, इसलिए, आपसे वार-म्बार क्षमा माँग रहा हूँ।"

'इसलिए' के आगे और पीछे अल्प विराम का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि क्षमा माँगने के कारण पर इसमें विशेष ज़ोर दिया गया है।

(ख) यदि 'क्योंकि' तथा 'और' किसी अधीन वीक्य के पहले लिखे गये हों तब तो उनके आगे और पीछे अल्प विराम का प्रयोग उचित है, किन्तु यदि ऐसा नहीं है तो इन दोनों शब्दों के बाद अल्प विराम की साधारणतया आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए निम्नांकित वाक्यों को देखिए :—

(१) "वह मारा गया, **क्योंकि,** जिसका उसने सबसे अधिक विश्वास किया वह वास्तव में उसका शत्रु था।"—अज्ञात

(२) "वह व्याकुल हो गया, **और,** जिस तरह विलाप करने लगा वह एक करुणाजनक दृश्य था।"—अज्ञात

परन्तु निम्नलिखित वाक्यों में केवल इस कारण कि इन शब्दों पर लेखक की विशेष ज़ोर देने की इच्छा थी, इनके आगे अल्प विराम का आना अनुचित नहीं है :—

(१) "महात्मा गांधी व्यक्तिगत जीवन में, विचार द्वारा भी, किसी की हिंसा नहीं करना चाहते, उसपर आक्रमण करना तो बहुत दूर की बात है, **और,** यही उनके सार्वजनिक जीवन की भी विशेषता है।"—रुद्रदत्त

(२) "उस समय महाभारत का होना नितान्त आवश्यक हो गया, उसमें एक प्रकार से न केवल पाण्डवों का बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण निहित हो गया, **क्योंकि,** कौरवों ने अपने अन्यायपूर्ण व्यवहारों से, स्वार्थ और अहंकार-प्रेरित अत्याचारों से उन उदासीन व्यक्तियों को भी क्षुब्ध कर दिया था जिन्हें न कौरवों से कुछ पाना था, न पाण्डवों से।"—रुद्रदत्त

(३) "मैं तुमसे वारम्वार कहता आ रहा हूँ कि जीवन में ब्रह्मचर्य के पालन से सुख मिलता है, **और,** मेरी इसी बात पर तुमने बिलकुल ध्यान नहीं दिया, जिसका फल तुम अब भोग रहे हो।" —रुद्रदत्त

(४) "अन्ततोगत्वा इतने सुसंगठित और सबल मुग़ल साम्राज्य, का भी पतन हुआ, **क्योंकि,** वह, अपने जीवन के अन्तिम काल में प्रजा की इच्छा के अनुकूल नहीं रह गया था, शासकों और शासितों के बीच उस सौहार्द भाव का सर्वथा अभाव हो गया था जिसके विना किसी भी शासन-पद्धति का चलना सर्वथा असम्भव है।"—रुद्रदत्त

विराम-संकेतों का आवश्यक से कम प्रयोग

विराम-संकेतों का उचित से अधिक प्रयोग जितना ही आपत्ति-जनक है उतना ही उन स्थानों में भी उनका प्रयोग न करना निन्द्य है जहाँ उनकी आशा की जाती है। जैसे वेषभूषा की साधारण त्रुटियाँ भी सभ्य समाज में बहुत खटकती हैं और किसी भी व्यक्ति को उपहास का पात्र बना देती हैं, वह कितना ही बड़ा और प्रतिष्ठित क्यों न हो, वैसे ही उचित और आवश्यक विराम-संकेतों के प्रयोग में असावधानी भी बड़े-से बड़े लेखक को आलोचना का पात्र बना सकती है। नीचे के अवतरणों में रेखांकित शब्दों को देखिए:—

(१) "सच जानिए वेदों की झाँकीवाला निबन्ध तो ऐसा आनन्द देता है कि बस कुछ कहा नहीं जा सकता बुद्धि प्रसन्न हो उठती है आप के प्रति श्रद्धा का भाव उमड़ने लगता है। दर्शनों की गुत्थी सुलझाने-वाले लेख भी इतने हृदयग्राह्य थे कि वाह वाह। सम्पादकीय टिप्पणियों का स्वाद निराला सार, यह कि जिस दृष्टि से देखा जाय पत्र वह अजीब काम करता है। जिसकी देश भर को अत्यन्त आवश्यक है आर्य्यसमाजियों के लिए तो सचमुच अमृत है। उच्च विचार और सरल भाषा का नमूना है ···· "—श्रीगणेशदत्तजी

(२) "प्राचीन पद्धति के अनुसार जायसी अपने काव्य में अलौ-किक वस्तुओं को लाने में भी नहीं हिचके हैं जैसे शुक का मनुष्य की भाँति बातचीत करना, राक्षस का मिलना आदि।"— पं० रामचन्द्र शुक्ल

(३) "इनके पूर्व के मुसलमान आख्यान-लेखकों ने अवधी भाषा का प्रयोग किया था पर जायसी जायस के रहनेवाले थे अतः उन्होंने अवधी के जिस शुद्ध रूप का प्रयोग किया है वह अधिक प्रामाणिक है।"

—पं० रामचंद्र शुक्ल

'निराला' के बाद कोई भी विराम-संकेत न होने के कारण वह सार का विशेषण हो जाता है और अर्थ में बेहद गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार की असावधानी करनेवाला लेखक पाठक की असुविधा को बहुत अधिक बढ़ा देता है और किसी प्रकार क्षन्तव्य नहीं है। 'सकता' और 'बुद्धि' के बीच में तथा 'उठती है' के बाद अल्पविराम का अभाव बहुत ही खलता है। आवश्यक (आवश्यकता ?) है के आगे अर्द्धविराम की आवश्यकता स्पष्ट है।

अधीन वाक्य संकीर्ण वाक्य का वह अंग है जो अपने अस्तित्व के लिए अन्य अंश पर अवलम्बित रहता है। इस अंश से, जिसे प्रधान वाक्य कहेंगे, उसका सम्बन्ध कभी-कभी अधीनता-संस्थापक संयोजक शब्दों वा सम्बन्ध-सूचक सर्वनामों से होता है। उसमें कर्ता और क्रिया होने पर भी सम्पूर्ण वाक्य में उसकी स्थिति इस प्रकार होती है जैसे वह एक ही शब्द हो। ये संज्ञा, विशेषण और क्रिया-विशेषण का काम देते हैं और तदनुसार सार-सूचक, विशेषक, और क्रियाविशेषक पद कहे जाते हैं। उदाहरण के लिए, (१) "उसने कहा मैं तुमको मारूँगा।" (यह एक निश्चय की सूचना देता है और संज्ञावत् प्रयुक्त है) इसे सार-सूचक पद कहेंगे, क्योंकि यह कहनेवाले के निश्चय का सार बताता है। (२) "उस व्यक्ति से, जो अच्छा काम करता है, सब लोग प्रसन्न रहते हैं।" (यहाँ 'जो अच्छा काम करता है' व्यक्ति संज्ञा की विशेषता बताता है, इसलिए यह विशेषक पद हुआ) (३) "जब तुम आओगे तब मैं जाऊँगा।" (यहाँ 'जब तुम

आओगे' 'मैं' कर्त्ता की जाने की क्रिया में विशेषता उत्पन्न करता है, इसलिए यह क्रिया-विशेषक पद है)

इन तीनों प्रकार के अधीन वाक्यों में से सार-सूचक वाक्य में एक विशेषता है। ऊपर दिये गये तीनों वाक्यों में से विशेषक और क्रियाविशेषक वाक्यों का 'जो अच्छा काम करता है' तथा 'जब तुम आओगे' अंश क्रमशः निकाल देने पर भी उनकी कोई विशेष क्षति नहीं होती। किन्तु सार-सूचक वाक्य के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है; उसमें से यदि 'मैं तुमको मारूँगा' निकाल दिया जाय तो वाक्य का प्राण ही निकल जाता है। कहने का मतलब यह कि 'उसने कहा' तथा 'मैं तुमको मारूँगा' का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है, क्योंकि कर्म के बिना कर्त्ता के अस्तित्व की कुछ सार्थकता ही नहीं रहती। यह चर्चा हमें इस प्रकार के वाक्यों में विराम-संकेतों के प्रयोग का निश्चय करने में बहुत सहायक होगी, अतएव पाठक को यह बात खूब हृदयंगम कर लेनी चाहिए, क्योंकि इस सम्बन्ध में हिन्दी में बहुत अधिक अराजकता फैली हुई है। पिछले पृष्ठों में 'कि' के आगे अथवा पीछे अल्पविराम के प्रयोगों के उदाहरण बहुत अधिक संख्या में दिये जा चुके हैं। उन पर विचार करने और उनके प्रयोग के सम्बन्ध में एक उचित राय क़ायम करने का यह उपयुक्त स्थान है। एक साधारण प्रश्न का उत्तर इस विषय को बहुत स्पष्ट कर देगा:—क्या कर्ता के बाद आनेवाले कर्म के पहले विराम-संकेत का प्रयोग आवश्यक है? उदाहरण के लिए, 'राम ने रावण को देखा' में 'राम ने' के बाद क्या अल्प विराम का प्रयोग ज़रूरी है?

इसका स्पष्ट, असंदिग्ध उत्तर है, नहीं। इसी सिद्धान्त का प्रयोग हम तब भी क्यों न करें जब कर्म केवल एक शब्द नहीं है बल्कि एक वाक्य है ? नीचे के कुछ वाक्यों को देखिए और उनमें सारसूचक पद के पहले आनेवाले अल्प विरामों की अनल्प अनुपयोगिता पर विचार कीजिए:—

(१) "अमात्य ने पहले ही से निश्चित कर लिया था कि, महाराज के पास जब हम जायँगे·····।"—लक्ष्मीधर वाजपेयी

(२) "ऐसा तो उनसे कह ही नहीं सकते कि, केवल आप से मिलने के लिए हमने यह युक्ति निकाली····।"—लक्ष्मीधर वाजपेयी

(३) "आपका कथन, कि भारतवासी सब तरह से पतित हैं, उचित नहीं है"—अज्ञात

(४) "आपका रोना, कि हमें बराबर घाटा हो रहा है, सूचित करता है कि या तो आप बहुत अधिक उपकारी व्यक्ति हैं, जिसे मानने को मैं तैयार नहीं, या फिर आप झूठ बोलकर दुनिया को ठगने के लिए पाखण्ड रचते हैं।"—अज्ञात

पिछले दो वाक्यों के सम्बन्ध में एक बात और कहनी आवश्यक है। वाक्य नं० ३ में 'कि' से लेकर 'पतित हैं' तक और वाक्य नं० ४ में 'कि' से लेकर 'हो रहा है' तक क्रिया-विशेषक पद समझने की ग़लती लेखक कर सकता है और वही ग़लती इन वाक्यों में हुई है। क्रिया-विशेषक पदों के पहले और आगे अल्पविराम का होना आवश्यक है। इसकी चर्चा आगे की जायगी। यहाँ उक्त पद क्रिया-विशेषक नहीं हैं, सारसूचक हैं। और सारसूचक पद का मुख्य वाक्य से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उसे अल्प विराम द्वारा पृथक् करना ठीक नहीं।

नीचे के वाक्य नं० १ और २ में सारसूचक पद कर्म के रूप में व्यवहृत हुआ है, परन्तु अन्तर केवल यही है कि पहले वाक्य की रचना में (direct) शैली का अनुसरण किया गया है और दूसरे की रचना में, अँगरेज़ी की देखादेखी (Indirect) शैली का।

(१) "राम ने श्याम से कहा, तुम वहाँ चले जाओ।"

(२) "राम ने गोपाल से कहा कि वह घर चला जाय।"

पाठक देखेंगे कि प्रथम वाक्य में अल्प विराम के बाद ठीक वे ही शब्द दिये गये हैं जो राम ने श्याम से कहे। इस अवस्था में 'कहा' के बाद अल्प विराम का प्रयोग उचित है। लेकिन दूसरे वाक्य में यह विशेषता नहीं है, अतएव इसमें 'कहा' के बाद अल्प विराम रखना उचित न होगा।

सारसूचक पदों के भी दो भेद किये जा सकते हैं। एक तो वे जो कर्त्ता, कर्म अथवा वाक्य पूरक (Complements) पदों का काम करते हैं, जिनके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं, और एक वे जिनका प्रयोग इनमें से किसी एक के साथ (In apposition) होता है। नीचे के तीन उदाहरणों को देखिए:—

(१) "सच्ची सी बात यह है कि, जापान के हाथ में जो सब सुबीते और मौक़े हैं वह हमारे हाथ में नहीं हैं।"

—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

(२) "मैंने जो कुछ कहा उसका यह मतलब नहीं कि, आज ही सब लड़के स्कूल कालेज से नाम कटवा लें और हम अँगरेज़ी का बहिष्कार कर दें।"—पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

(३) "मेरा कहना यही है कि, लोग आँखें मूँद कर अँगरेज़ी

न पढ़ें और न उसके पीछे पागल हो जायँ।"

—प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

उक्त वाक्यों में सर्वनाम शब्दों के आगे जो रेखांकित पद आये हैं वे सब In apposition हैं और पाठक देखेंगे कि सारसूचक पदों में तथा उनमें एक विशेष अन्तर है। यहाँ 'कि' के पहले व्याकरण की दृष्टि से, अल्प विराम का प्रयोग अनुचित नहीं है। और यदि हमारे श्रद्धेय चतुर्वेदी जी ने बेचारे अल्प-विरामों को थोड़ी दूर आगे ले जाकर न पटका होता तो न उनकी दशा दयनीय होती और न उन्हें उलहना देने का हमें कोई कारण मिलता। परन्तु यदि कोई विशेष बात न हो तो अच्छा तो यही होगा कि 'कि' के पहले या आगे अल्प विराम रखने का झंझट ही तोड़ दिया जाय, जैसा कि निम्नलिखित वाक्यों में है:—

(१) "सबसे बड़ी बात यह है कि यह कभी नहीं माना जा सकता कि प्राचीन काल के सभी ज्ञान मन्त्रों द्वारा··· ।"—सरस्वती

(२) "सबसे बड़ा भेद यह है कि इस आध्यात्मिक शरीर अथवा जीवात्मा का जीवन उसके निर्जीव स्थूल शरीर पर अवलम्बित नहीं रहता।"—नारायणप्रसाद अरोड़ा

(३) "वहाँ के विज्ञानवेत्ता सदा इसी धुन में लगे रहते हैं कि कोई ऐसी नई बात, नया तत्त्व या नया यन्त्र निकालें जिससे मानव जाति का श्रम या कष्ट कम हो जाय और उसे सुख या सुविधा प्राप्त हो।"—सरस्वती

(४) "उस कृपा का फल यह हुआ कि मुहम्मदअली को तुर्की सरकार की ओर से एक महत्व का कार्य दिया गया।"

—सरस्वती

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सारसूचक पदों के पहले तथा उन वाक्यों के पहले भी जो In apposition लिखे जाते हैं, अल्प विराम का प्रयोग करना इस कारण ठीक नहीं है कि जहाँ वाक्य में इतनी अधिक घनिष्ठता है वहाँ उसके मध्य ही में पृथक्ता न प्रकट करनी चाहिए। इसी सिद्धान्त के अनुसार कर्त्ता और क्रिया के बीच में भी विराम का प्रयोग अनुचित है। नीचे के तीन वाक्यों को देखिए:—

(१) "राम ने, रावण को इसलिए मारा कि वह देवताओं, ब्राह्मणों और हरि-भक्तों को क्लेश देता था।"—रुद्रदत्त

(२) "बादलों की ओट में छिपे हुए धवल चन्द्रमा ने, कुमुद कुल को, आह्लादित कर दिया।"—रुद्रदत्त

(३) "इसके उपरांत वहाँ से, हैंपटन विद्यालय में, पहलेपहल वाशिंगटन से झाड़ू दिलवाकर उनकी परीक्षा लेनेवाली, मिस मैक आईं·····।"—पं० रामचन्द्र शुक्ल

(४) "सभ्य कहलानेवाले आधुनिक देशों में नगर का मल मूत्र भी, व्यर्थ नहीं जाने पाता; उसका उपयोग आसपास के खेतों की उत्पादिका शक्ति बढ़ाने के लिए किया जाता है।"—रुद्रदत्त

(५) "सारांश यह कि जो अलौकिक उन्नति पूर्वालंकृत काल में प्रारम्भ हुई थी, वह उत्तर काल में विशेषतया घटी तो नहीं, परन्तु आगे भी न बढ़ सकी।"—मिश्रबन्धु

उक्त वाक्यों में यदि 'राम ने', चन्द्रमा ने', 'मलमूत्र भी' आदि कर्त्ता शब्दों के बाद अल्प विराम का प्रयोग उचित नहीं है तो इसी सिद्धान्त की सहायता से हम उन वाक्यों में भी कर्त्ता शब्द के आगे यह संकेत रखना उचित नहीं समझेंगे जिनमें उक्त कर्त्ता शब्द की समाप्ति उसकी परिभाषा करनेवाले किसी सम्बन्ध

सूचक वाक्य से होती है। नीचे के वाक्यों में अल्प विराम का यह अनुचित प्रयोग पाठक देखेंगे:—

(१) "वही दवा जिसके उपयोग से सैकड़ों व्यक्तियों को इतना लाभ पहुँचा, मेरे भाई के प्राण ले गयी।"—रुद्रदत्त

(२) 'वही काव्य जो सहृदय जन के चित्त में रस का सञ्चार करता है, शुष्क-हृदय जड़ व्यक्ति को केवल बकवाद समझ पड़े तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?"—एक समालोचक

(३) "जिस विश्व-विद्यालय में ये पढ़ते हैं वह, अध्यात्म को छोड़कर और सब विषयों की शिक्षा देता है······।"—रुद्रदत्त

(४) "क्या मैं यह आशा करूँ कि मेरा स्वप्न, स्वप्न ही न रहेगा वह कभी सच हो जायगा।'—विश्वनाथ गणेश आगाशे बी० ए०

विशेषक वाक्य पद वा शब्द

किसी संज्ञा की विशेषता व्यक्त करना विशेषण का काम है। विशेषण एक शब्द भी हो सकता है, तथा शब्द-समूह और वाक्य भी। उदाहरण के लिए नीचे के वाक्यों में देखिए:—

(१) "इस नाटकीय वातावरण में जयशंकर 'प्रसाद' हमारे ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित करते हैं।"—शिलीमुख

(२) "वर-कान्या का जोड़ा मिलाते वक्त नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखना चाहिए······।"—श्रीसुशीलादेवी निगम

(३) "यदि जीवन में कभी किसी पुरुष को कोई ऐसी स्त्री मिले..., जिसके साथ वे ऐसे निष्कपट एकात्म भाव का अनुभव कर सकें तो उन्हें समझ लेना चहिए कि यही उनका जीवन-संगी है।"

—श्रीसुशीलादेवी निगम

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कर्त्ता और क्रिया का सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि इन दोनों के बीच में अल्प विराम

का रहना उचित नहीं जान पड़ता। इस कथन में यहाँ हम इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि कर्त्ता अथवा किसी कारक शब्द के साथ यदि उसकी परिभाषा करनेवाला कोई शब्द, शब्द समूह, वा वाक्य होगा तो इनके और उक्त कर्त्ता अथवा कारक-शब्द के बीच में किसी प्रकार का विराम नहीं रहेगा। नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उन्हें पाठक ध्यान से देखें:—

(१) "वे ब्राह्मण, जो पूजापाठ करते हैं, पवित्र हैं।"—रुद्रदत्त

(२) "ये स्तम्भ, जिन्हें लोग लाट कहते हैं और बिहार प्रान्त-वाले जिन्हें लौर कहते हैं, बहुत ऊँचे हैं।"—सरस्वती

(३) "जिसके साथ लगाव हो वह सम्बन्धी कहलाता है।"
श्रीरामलोचनशरण

(४) "मेरे ही मामा थे, जो मामी की आज्ञा बिना द्वार से टलते न थे।"—प्रेमचन्द

(५) "मैं तो ऐसी कई औरतों को जानती हूँ, जो पुरुषों ही पर रोब जमाती हैं।"—प्रेमचन्द

(६) "जिन्होंने कलकत्ते के अलहिलाल पत्र में आपकी लेख-मालाएँ पढ़ी होंगी वे जानते होंगे कि आपकी राजनैतिक योग्यता किस दरजे की थी।"—सरस्वती

(७) "पुरुष सदैव टोपी पहनते हैं, जो हैट के ढंग की किनारेदार होती है।"—सरस्वती

(८) चलो हम गगनमण्डल की ओर अपनी आँख उठाकर देखें और उन दोनों देवतों को, जिनसे हमारे पूर्वज महर्षि पानी माँगा करते थे ढूँढ़ें।"—सरस्वती

(९) "वह जलकोश यही आकाशगङ्गा थी, जिससे तपी हुई पृथ्वी को सींचने के लिए उक्त मन्त्र में उन्होंने प्रार्थना की थी।"—सरस्वती

(१०) "जायसी भावुक थे, बहुश्रुत थे, और सच्चे कवि थे जिन्हें 'प्रेम की पीर' ने पदमावत जैसे सुन्दर ग्रन्थ के रचने के लिए प्रेरित किया था"।—श्रीरामचन्द्र शुक्ल

(११) "वहाँ पर महादेव का एक मन्दिर था, जहाँ रतनसेन अपने साथियों के साथ बैठकर तप करने लगा।"—श्रीरामचन्द्र शुक्ल

(१२) "उनका कहना है कि स्त्री-पुरुष के शरीर में भिन्न-भिन्न विद्युत् रहती हैं, जो एक दूसरे के स्पर्श से खिंचती हैं।"

—श्रीमती सुशीला देवी निगम

(१३) "साथ सोने से यह आकर्षण घट जाता है तथा उसमें चेतना-शक्ति कम हो जाती है, जिससे पुरुष संयमी होता है...।"

—श्रीमती सुशीला देवी निगम

(१४) "मेरी माँ जो काल के गाल के निकट पहुँच गई थी, कुछ दिनों बाद अच्छी हो गई...।"—सरस्वती

(१५) "इन घटनाओं के अतिरिक्त यत्र-तत्र उनकी प्रयोजक परिस्थिति की सूचना भी है, जो पहले और दूसरे अंक में विभाजित है।"

—श्रीरामकृष्ण शुक्ल एम्. ए.

(१६) "जीता रहे क्षात्र धर्म्म और कृषि-वाणिज्य, जिनके कारण "ज्ञान-ज्येष्ठ" ब्राह्मण पञ्चगव्य का प्राशन करने के लिए तो विवश नहीं किये जाते।"—सरस्वती

(१७) "वह आत्मप्रवंचना, जिसमें अब तक उन्होंने अपने को डाल रक्खा था कि कदाचित् अब भी जीवन के कुछ चिह्न प्रकट हो जायँ, एक परदे के समान आँखों के सामने से हट जाती है, और मोह का बन्धन टूट जाता है...।"—प्रेमचन्द

वाक्य नं० १ में 'वे ब्राह्मण' की परिभाषा में 'जो पूजा-पाठ करते हैं' कहा गया है, अतएव विशेषक वाक्य के आरम्भ

में अल्प विराम रखने की कोई आवश्यकता नहीं। वाक्य नं० २ में जो विशेषक वाक्य आया है वह 'स्तम्भ' की किसी प्रकार की परिभाषा नहीं करता बल्कि उसके सम्बन्ध में एक नवीन बात बतलाता है और इस प्रकार मूल वाक्य से स्वयं को कुछ पृथक् समझे जाने का कारण उपस्थित कर देता है। अतएव, इसमें 'स्तम्भ' के बाद और 'जिन्हें' के पहले अल्प विराम का प्रयोग उचित हुआ है। तीसरे वाक्य में 'जिसके साथ लगाव हो' 'सम्बन्धी' का विशेषक है और उसकी परिभाषा प्रस्तुत करता है। इस कारण दोनों वाक्यों में घनिष्टता स्वतःसिद्ध है और अल्प विराम का अभाव सर्वथा उचित है। चौथे वाक्य में 'मामा थे' के बाद अल्प विराम की उपस्थिति अवाञ्छनीय नहीं है, क्योंकि बाद को आनेवाला विशेषक वाक्य 'मामा' के सम्बन्ध में एक प्रकार की आलोचना करता है, उनकी प्रकृति के सन्बन्ध में एक नई बात बताता है। इसी प्रकार वाक्य नं० ५, ७, १०, ११, १३, १५, और १६ में अल्प विराम का होना उचित, नं० ८, ६, १२ और १४ में अनुचित, तथा नं० ६ में उसका लोप उचित सिद्ध किया जा सकता है।

विराम संकेतों के उचित से अधिक प्रयोग के सम्बन्ध में एक बात और कहकर हम अपने कथन को समाप्त करेंगे। कभी-कभी किसी किसी वाक्य में ऐसे अंश भी होते हैं जिनका व्याकरण-सम्मत स्थान उसमें नहीं मिलेगा; वास्तव में उनका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है, यद्यपि वे पृथक् होकर किसी विचार को पूर्णतया व्यक्त भी नहीं कर सकते, क्योंकि उनमें क्रिया का

अभाव होता है। उदाहरण के लिए निम्नाङ्कित वाक्य प्रस्तुत किये जाते हैं:—

(१) "मेरे वहाँ रहते, किसी उपद्रव की आशंका करना व्यर्थ है।"—अज्ञात

(२) "करुणाशंकर के झूठी क़सम खाते ही, एक बड़े अचरज की बात हो गयी; सामने से एक सर्प ने अचानक प्रकट होकर उसे डस लिया और फिर ग़ज़ब की तेज़ी से एक ओर जाकर वह ग़ायब हो गया।"

ऐसे स्वतन्त्र वाक्यांशों के मध्य में विराम का प्रयोग न करना चाहिए। उदाहरणार्थ उक्त प्रथम वाक्य में 'मेरे' के बाद और द्वितीय वाक्य में 'करुणाशंकर' के बाद अल्प विराम रखना उचित न होगा।

आवश्यक से कम प्रयोग

वाक्यों में क्रियाविशेषण शब्दों, पदों, और वाक्यों का उपयोग क्रिया में विशेषता करने की दृष्टि से होता है। इन शब्दों, पदों, और वाक्यों को हटा देने पर भी मूल वाक्य और मूल क्रिया की कोई अंग-हानि नहीं होती। अतएव यह आवश्यक होता है कि विराम-संकेतों के प्रयोग-द्वारा लेखक वाक्य-विशेष के साथ उनके सम्बन्ध को सूचित कर दे। यद्यपि व्याकरण की आज्ञा तो यही होगी कि जहाँ कहीं इस प्रकार के शब्द, पद, और वाक्य आवें वहाँ विराम-संकेतों का आवश्यक प्रयोग किया जाय। इस हद तक व्याकरण का सेवक होने की सलाह तो हम लेखक को नहीं दे सकते, क्योंकि क्रिया-विशेषण का साधारण बोलचाल में भी इतना अधिक प्रयोग

होता है कि यदि व्याकरण-सम्मत प्रणाली ही का अवलम्बन किया जाय तो वाक्य-रचना बहुत अधिक भारी, कुण्ठित, और मन्द हो जायगी। अतएव, यद्यपि यह सही है कि अनेक स्थलों में विराम-चिह्न का लोप कर देना असावधानी समझी जायगी तथापि यह भी निर्विवाद है कि अनेक स्थानों में उसका लोप कर देना न केवल उचित बल्कि प्रशंसनीय कहा जायगा।

क्रियाविशेषण शब्दों, पदों, और वाक्यों के प्रयोग के सम्बन्ध में एक बात पाठक को अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए। शब्दों के पहले और पीछे अल्प विराम रखना जितना ही अवाञ्छनीय है, उतना ही वाञ्छनीय यह है कि शब्दों की अपेक्षा पदों के, और पदों की अपेक्षा वाक्यों के पहले और पीछे विराम-संकेत रखे जायँ। इसका एक कारण है। निम्नांकित उदाहरण को पाठक देखें:—

१—वह इस वर्ष बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

२—वह, इस वर्ष, बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

एक ही वाक्य के उक्त दो रूपों पर विचार किया जायगा तो सहज ही इन दोनों से व्यक्त होनेवाले भावों का अन्तर स्पष्ट हो जायगा। प्रथम वाक्य में व्यक्ति-विशेष के परीक्षोत्तीर्ण होने की एक साधारण सूचना है। किन्तु दूसरे वाक्य में 'इस वर्ष'—जो क्रिया-विशेषण शब्द हैं—के पहले और पीछे अल्प विराम रखने से बोध होता है कि वह व्यक्ति पहले उसी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो चुका है। यदि इस तरह का कोई आलंकारिक प्रभाव नहीं उत्पन्न करना है तो लेखक को चाहिए कि वह

क्रिया-विशेषण शब्दों के पहले या पीछे विराम-संकेत लगाने से विरत हो।

किन्तु क्रिया-विशेषण वाक्यों के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। इनके विषय में तो इस नियम को स्मरण रखना सदैव उपयोगी होगा कि यदि ये वाक्य के बीच में आते हैं तो उनके पहले और पीछे दोनों ओर अल्प विराम होने चाहिए, यदि विशेषक वाक्य ही मूल वाक्य को समाप्त कर देता है तो आरम्भ में प्रत्येक अवस्था में अल्प विराम रहना उचित है और यदि प्रथम श्रेणी के वाक्यों में दो अल्प विरामों में से किसी एक का लोप करना आवश्यक ही समझा जाय तो वह आरम्भ का होना चाहिए, न कि अन्त का। नीचे के उदाहरणों से, जो भिन्न-भिन्न हिन्दी-लेखकों और पत्रों से लिये गये हैं, यह प्रकट हो जायगा कि इस सम्बन्ध में कितनी असावधानी की जाती है:—

(१) "उत्तरी भारत, विशेषकर अवध में इसके आधार पर एक कहानी प्रचलित हुई जिसका नाम था हीरामन सूआ और पद्मिनी रानी की कहानी।"—श्रीरामचन्द्र शुक्ल

(२) "वे इतिहास के जानकार थे अतः जो अंश उन्होंने लिया है, ठीक लिया है।"—श्रीरामचन्द्र शुक्ल

(३) "जब मुझे विश्वास हो जायगा, तब आपकी विद्वत्ता और योग्यता के अनुसार आपका आदर और सत्कार अवश्य होगा······।"

—श्रीलक्ष्मीधर वाजपेयी

(४) "ठीक ऐसे ही समय में जब कि महाराज, भारत की एक प्रसिद्ध भाषा के उद्धार कार्य्य में लगे हुए थे कुछ लोगों के शिकायत

करने पर या स्वयं उस समय के बादशाह औरंगज़ेब ने ····उन पर चढ़ाई कर दी।"—सिखसाधु सन्तमानसिंह

(५) "यह सत्य है कि छन्दोगति के कारण इस उद्देश्य में बाधा पड़ती है, किन्तु जहाँ तक संभव हो इस उद्देश्य में सफल होने का प्रयत्न करना चाहिए।"—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(६) "निस्सन्देह यह 'अमरद' शब्द बोलचाल का नहीं है, वरन् अन्य भाषा का अप्रचलित शब्द है, किन्तु कवितागत सौन्दर्य की रक्षा के लिए उसका प्रयोग एक मुख्य स्थल पर किया जाना, आशा है तर्क का हेतु न होगा।"—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(७) "यदि शिक्षित हिन्दुस्तानी चुपचाप रहकर ऐसे लोगों को जो हमारे ही रुपये और हमारी ही मिहनत के भरोसे अपना जीवन व्यतीत करते हैं यह हिम्मत दिलाएँगे कि ···।"

—श्रीमती उमा नेहरू

(८) "एक बार एक अमरीका के हेल्थ अफ़सर ने जो अब अन्तर्राष्ट्रीय नौकरी में है कहा था कि जब भारत की वास्तविक दशा सब लोगों को मालूम हो जायगी······।"

—श्रीमती उमा नेहरू

(९) "बच्चा किसी नई वस्तु के दिखाई देने पर यह जानने के लिए बहुत उत्कण्ठित होता है कि यह क्या है।"—रुद्रदत्त

(१०) "कल रात मुझे मालूम नहीं हुआ नहीं तो आपको यहाँ बुला लाता।"—वेदोदय

(११) "स्थानीय होलकर कालेज के जन्म देने में भी कहते हैं, आपका हाथ था।"—सरस्वती

(१२) "श्रद्धेय विद्वान् पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'काव्य में, रहस्यवाद में, छायावाद के विरोध में' अभिव्यंक्तिवाद का जिसे दीनजी प्रकाशवाद कहते थे उल्लेख किया है।"—भारत

गणना

हिन्दी के लेखक वाक्य में अनेक वस्तुओं की गणना के अवसर पर अल्प विराम के प्रयोग की विभिन्न प्रणालियों का अवलम्बन करते हैं। कुछ का प्रयोग नीचे देखिए:—

(१) "पंडितजी का व्यवहार इतना निष्कपट, हृदय इतना सरल और स्वभाव इतना नम्र था कि जो कोई भी एक बार उनसे मिलता, उनसे बातचीत करता, वह उन्हीं का हो जाता था।"

—विद्यार्थी

(२) "इसमें सन्देह नहीं कि उनकी मृत्यु से हिन्दी का एक अच्छा लेखक, एक सुवक्ता, एक साहसी पुरुष, एक सच्चा सुधारक तथा एक श्रेष्ठ सज्जन, इस पृथ्वी से उठ गया।"

—श्रीअवध उपाध्याय।

(३) "सीधे-सादे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शर्म्माजी परिश्रमी, कार्यदक्ष, हँसमुख, दूरदर्शी, उदार और सहनशील व्यक्ति थे।"—पं० रामलखन शुक्ल बी. ए.

(४) "एक रात की बात है कि मैं, मेरा छोटा भाई और मेरे चचा ये सब लोग भोजन के पश्चात् बातें कर रहे थे।"

—विश्वनाथ गणेश आगाशे बी. ए.

(५) "बहुत लोगों का विचार है कि हिन्दू धर्म्म, हिन्दी भाषा और हमारा प्राचीन आर्यपन तभी तक स्थिर रह सकते हैं…"

—मिश्रबन्धु

(६) "इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर और ललित भी उपमा के ही समान है।"—मिश्रबन्धु

(७) "इसके अतिरिक्त लेखन-क्षमता, भाषाधिकार, अभ्यास,

विचार सरणि की अपक्वता और आवश्यकता भी यथावसर आड़े आती है और भाषा की दुरूहता और सरलता का कारण होती है।"

—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

कोष्टक

कोष्टक (   ) उस चिह्न को कहते हैं जिसके भीतर हम ऐसे शब्द, पद, वाक्य आदि को रख सकते हैं जिसका सीधा सम्बन्ध वाक्य के साथ नहीं है, किन्तु जो प्रसंगवश समाविष्ट कर लिया जाता है। वाक्य के बीच में इस प्रकार के कोष्टक से बहुत कम सहायता ली जाती है, क्रिया-विशेषक वाक्यों, पदों आदि के पहले और पीछे, या केवल पीछे अल्प विराम का प्रयोग करके यह काम निकाल लिया जाता है, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। परन्तु एक प्रकार का कोष्टक और भी होता है जो वाक्य के बीच में असम्बद्ध रूप से रहता है लेकिन व्याकरण की दृष्टि से वाक्य के शेष भाग के साथ मेल नहीं रखता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों को देखिए:—

"यहाँ के आदमी, अगर वे अपनी इज़्ज़त आबरू की कुछ भी क़द्र करते हैं तो, तब तक लड़ेंगे जब तक उनकी दम में दम है।"

स्वतन्त्र वाक्यों में अल्प विराम का प्रयोग

मिश्र (Compound) वाक्यों में प्रायः दो या दो से अधिक वाक्य होते हैं और कुछ संयोजक अव्यय शब्दों द्वारा संयुक्त किये जाते हैं। ये कुछ अव्यय शब्द निम्नलिखित हैं:—

और, या, लेकिन, इसलिए, अतएव, क्योंकि।

अधीन वाक्यों के सम्बन्ध में अन्यत्र लिखा जा चुका है।

इनका अस्तित्व प्रधान वाक्य पर निर्भर है। किसी मिश्र या संसृष्ट (Complex) वाक्य में वाक्य-विशेष स्वतंत्र है या अधीन, इस बात के जानने का एक सुगम मार्ग है—स्वतन्त्र वाक्य को यदि हम पूर्ववर्त्ती स्वतन्त्र वाक्य के पहले रख दें तो वाक्य-रचना पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसके विपरीत, यदि अधीन वाक्य को अपने पूर्ववर्त्ती स्वतंत्र वाक्य के पहले हम लिख दें तो कोई अर्थ ही न निकले। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वाक्य पाठक देखें:—

(१) राम आया और लक्ष्मण गया। (प्रथम रूप)

(२) लक्ष्मण गया और राम आया। (परिवर्तित रूप)

इन दोनों वाक्यों में कोई अन्तर नहीं है। परन्तु निम्नलिखित वाक्यों में वैसी बात नहीं है, इनमें स्थान का परिवर्तन कर देने से भाव की अभिव्यक्ति में गड़बड़ी हो जाती है:—

(१) राम, जिसका भाई लक्ष्मण है, गया।

(२) जिसका भाई लक्ष्मण है, राम गया।

स्वतन्त्र वाक्यों को जोड़नेवाले संयोजक अव्यय शब्दों के पहले साधारणतया अल्पविराम रखने से काम चल सकता है। परन्तु इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दो बातें और स्मरण रखनी चाहिए:—

(१) यदि वाक्य बड़ा और भारी है तो केवल अल्पविराम रखने से काम नहीं चलेगा।

(२) वाक्य-विशेष का मिश्र वाक्य में पूर्ववर्त्ती वाक्य के साथ विचारगत सम्बन्ध कैसा है, इस पर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। यदि दोनों में अत्यन्त अधिक घनिष्ट सम्बन्ध

और निकटता है तो अल्पविराम पर्य्याप्त होगा, अन्यथा अर्द्ध-विराम का प्रयोग करना चाहिए।

हमारे प्रथम कथन के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित वाक्य पाठक देखें:—

(क) "इस गुण के कारण यदि हम उन्हें अजातशत्रु कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी, सैकड़ों खरी-खोटी उन्हें सुनाइए, सैकड़ों गाली उन्हें दीजिए, किन्तु वे सिवाय मुस्कराने के और कुछ नहीं कहेंगे।"

—बाबू केदारनाथ गुप्त बी० ए०

उक्त वाक्य में 'अत्युक्ति न होगी' के बाद अल्प विराम न रख-कर अर्द्ध विराम रखना चाहिए था।

किन्तु निम्नलिखित मिश्र वाक्य में भी अर्द्धविराम का प्रयोग न किया जाना, एक अक्षम्य अपराध है:—

"तुम माँ बाप के बुढ़ापे की लकड़ी हो, तुम स्त्री की आँखों के तारा हो, तुम छोटी छोटी अधखिली सन्तति-लताओं के सींचनेवाले सुचतुर माली हो, तुम कुटुम्ब-रूपी आकाश के जाज्वल्यमान चन्द्रमा हो, तुम जाति के मुकुट-मणि हो, तुम देश की आशा के मेरुदण्ड हो, इस समय तुम्हारा निश्चेष्ट होकर बैठ रहना एक ऐसा पाप है जिसका कोई प्राय-श्चित्त नहीं हो सकता।"—रुद्रदत्त

नीचे के उदाहरणों को देखने से हमारे द्वितीय कथन को भी पाठक हृदयंगम कर सकेंगे:—

(क) "उन्होंने विस्मय और कौतूहल के परे कुछ भी नहीं देखा, यह नहीं समझा कि अन्तिम व्यंग क्या है।"—भारत

(ख) "महादेव ने (जो भाट के वेश में थे) राजा को बहुत समझाया कि यह जोगी नहीं राजा है,—यह पदमावती के योग्य वर है……।"—पं० रामचन्द्र शुक्ल

(ग) " इधर चित्तौर में हाहाकार मच गया—दोनों रानियाँ सती होने को तैयार हुईं।"—पं० रामचन्द्र शुक्ल

(घ) " सम्पादक और पाठक क्षमा करें, यह पैरा कुछ बड़ा हो गया।"—पद्मसिंह शर्मा

उक्त चारों वाक्यों को पाठक ध्यान से देखें। ये मिश्र वाक्य हैं और रेखांकित अल्प विराम के बाद इनमें स्वतन्त्र वाक्य आये हैं। इन सबकी अपने सहयोगी वाक्यों के साथ इतनी अधिक मैत्री और घनिष्टता है कि अल्प विराम न रख कर अर्द्ध विराम रखकर इन्हें अधिक पृथक् करना इनके साथ अन्याय करना होगा।

अधीन वाक्यों के पहले अर्द्ध विराम का प्रयोग

मिश्र वाक्य में स्वतन्त्र वाक्यों के पहले साधारणतया अल्प विराम रखने से बचना जितना उचित और आवश्यक है, प्रायः उतना ही अधीन वाक्यों के पहले साधारणतया अर्द्ध विराम का प्रयोग करने से विरत रहना भी है। फिर भी आलंकारिक कारणों से अथवा वाक्य-रचना के आनुपातिक सौन्दर्य की रक्षा के लिए कभी-कभी स्वतन्त्र वाक्यों के पहले अल्प विराम और अधीन वाक्यों के पहले अर्द्ध विराम रखना भी अनुमोदनीय हो सकता है। आशा है, नीचे के वाक्य पर दृष्टिपात करने से पाठकों को अर्द्ध विराम की उपयुक्तता तथा अल्प विराम की अनुपयुक्तता स्पष्ट हो जायगी:—

"जो देश का हृदय-सम्राट् है; जिसके लिए बच्चा-बच्चा अधिक-से-अधिक स्वार्थत्याग करने के लिए कटिबद्ध हो सकता है; जिसका नाम ही सुनने से शरीर में बिजली की शक्ति का संचार हो जाता है वह हमारा प्यारा नेता कहाँ है?"

इस वाक्य में अर्द्ध विराम का प्रयोग आलंकारिक कारणों पर अवलम्बित है।

प्रश्नवाचक और आश्चर्य-चिह्न

प्रश्न का भाव प्रकट करने के लिए वाक्य के अन्त में (?) यह चिह्न लगाया जाता है, और विस्मय तथा आश्चर्य का भाव व्यक्त करने के लिए (!) यह चिह्न काम में लाया जाता है।

कभी-कभी प्रश्नवाचक और आश्चर्य-चिह्न में अन्तर न समझकर लेखक धोखा खा जाते हैं। उदाहरणार्थ नीचे के वाक्यों को देखिए:—

(१) "कितना सुन्दर है यह दृश्य ?"

(२) "कितने आदमी इतने नेक, मिलनसार, और परोपकारी हो सकते हैं !"

(३) "किस वीर की भवें नहीं तन गईं !"

(४) "निर्दय दैव की यह कठोरता पूर्ण करतूत किसके हृदय को विदीर्ण नहीं कर देगी !"

इन वाक्यों में से नम्बर १ में आश्चर्य-चिह्न होना चाहिए, और नम्बर २, ३, और ४ वाक्यों में प्रश्नवाचक चिह्न रखना ही उचित है।

यदि पाठक यह अच्छी तरह समझ लें कि आश्चर्य-चिह्न का उचित प्रयोग क्या है तो उक्त भ्रम में पड़ने से वे बच जायँ। इसलिए हम उनसे निम्नलिखित बातें सदा स्मरण रखने का अनुरोध करते हैं:—

(१) आश्चर्य-चिह्न का प्रयोग उन शब्दों के आगे किया जाता

है जो विस्मयादिबोधक अव्यय के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे "अहा! हम आ गये!"

(२) सम्बोधन सूचक शब्दों के बाद यह चिह्न काम में लाया जाता है। जैसे, "मेरे मित्र! मेरे भाई!"

(३) ऐसे पूरे वाक्य के बाद यह चिह्न लगाया जाता है जिसमें विस्मय-सूचक शब्द हों। जैसे, "वह कैसा सुन्दर है! वह कितना मनोहर है!"

(४) बहुत-से निम्न श्रेणी के लेखक कहीं-कहीं किसी सुन्दर विचार या भाव के प्रति अपनी मुग्धता प्रकट करने के लिए भी इस चिह्न को लगाते हैं। यह अच्छी शैली नहीं है। विशेष करके वैज्ञानिक विषयों के लेखक को इस जाल से बचना चाहिए।

(५) किसी का तिरस्कार करने के लिए भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए नीचे के वाक्य देखिए:—

"अब देखिए १ अरब ६९ करोड़ जन-संख्या में से ग्रेट-ब्रिटेन और उसके साथी १८ राज्यों की जन-संख्या १ अरब ३७ करोड़ है। वह सभी जर्मनी के प्रतिकूल है। उधर जर्मनी और उसके सहयोगी राज्यों की मनुष्य-संख्या कोई पौने सोलह करोड़ है। यह एक तरफ़ है और वह दूसरी तरफ़। रह गई केवल १७ करोड़ जनता। उसमें से भी २ करोड़ से अधिक मनुष्य जर्मनी आदि से लड़ते तो नहीं, पर लड़ने के लिए तुले हुए अवश्य हैं। इस प्रकार सारी दुनिया की आबादी का कोई $\frac{१}{१०}$ अंश परस्पर मारकाट में रत है। यह इसलिए कि निर्बलों की रक्षा हो और दुनिया से अन्याय तथा अत्याचार निर्मूल हो जाय!"—सरस्वती

"यदि उनकी भी अब यही राय हो कि घुटने ही पर से पाँव कटेगा तो फिर कल यही सही, इतना बड़ा आपरेशन बिना क्लोरोफ़ार्म सुँघाये

कैसे हो सकेगा और इस पराकाष्ठा की निर्बलता में दोपहर की गर्मी में—पर अब तो डाक्टर साहब सब सामान से लैस होकर आ चुके थे बात कैसे टलती, उन्हें जल्दी थी, आपरेशन का वक्त बीत रहा था !''

—पं० पद्मसिंह शर्मा

इन नियमों पर दृष्टि रखकर पाठक निम्नलिखित वाक्यों पर विचार करें:—

(१) "समय पर पत्र का उत्तर देना तथा लेख की पहुँच तुरन्त भेजना शर्माजी का विशेष गुण था। (खेद है कि उनके इस गुण को मैं ग्रहण नहीं कर पाया !)"—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

(२) "पर मैं सोचता ही रहा और उनसे बातचीत करने का फिर मौक़ा ही न मिला।"—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

आदेशक

हिन्दी में आदेशक का प्रयोग ख़ूब किया जाता है। उच्च कोटि की पुस्तकों से लेकर छोटे-से-छोटे समाचार-पत्र तक में इसका प्रयोग देखने में आता है। खेद इसी बात का है कि इससे काम लेने के सम्बन्ध में बहुत अधिक अज्ञान फैला हुआ है और जिसे कोई विराम-संकेत सहायता देता नहीं दिखाई देता वह आदेशक ही को कल्पवृक्ष समझकर, जहाँ जी में आया वहीं, उसे भिश्ती, पीर, बबर्ची, खर, सभी का चार्ज लेने के लिए विवश कर देता है। हम यहाँ हिन्दी के विभिन्न प्रसिद्ध ग्रन्थकारों और पत्रों से निम्नलिखित अवतरणों को पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हैं, जिनमें से कुछ में आदेशक का उचित प्रयोग किया गया है, और कुछ में अनुचित।—

(१) "किन्तु यहाँ पर और एक नई चीज़ आ गयी —पश्चिम के परिवर्तनशील हस्तक्षेप का एक और फल जो यहाँ की स्थिति में विघ्न

डाल रहा है वह यह कि सम्भव है कि विदेशियों की विचित्र सहानुभूति से प्रोत्साहित होकर अछूत लोग अब बहुत दिनों तक इसे गवारा न करें कि उनकी धार्मिक स्थिति का निर्णय करना उच्च जाति के हिन्दुओं की इच्छा और स्वच्छन्दता पर निर्भर रहे।"—श्रीमती उमा नेहरू

(२) "जब वह लाहौर में ठहरी हुई थीं तो एक दिन टेलीफ़ोन पर मुझसे कहा गया कि मैं उनसे मिलूँ – खुफ़िया पुलिस के अफ़सर ने जिसको मैं जानता था मुझसे कहा कि एक अमरीकन महिला हिन्दोस्तान के प्रश्नों का अध्ययन करने आयी हुई हैं और मुझसे मिलना चाहती हैं—मैंने उस भलेमानस से कहा कि अगर वह महिला आपकी निजी मित्र हैं ·········।"—सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर

(३) "प्राचीन समय में गंगा और यमुना की उपत्यका में दो प्राकृतों का प्रचार था – मागधी और शौरसेनी।"—पं० रामचन्द्र शुक्ल

(४) "उसने एक बार वाशिंगटन से ओबियो राज्य में मिलने पर कहा था—'यद्यपि नियमानुसार अब मैं अपने स्वामी का देनदार नहीं हूँ पर तो भी मैंने उनको वचन दिया है, और मैं अपने वचन से कभी फिर नहीं सकता'।"—पं० रामचन्द्र शुक्ल

(५) "उसने कहा—नहीं; ये तुम्हारे पूर्व जन्म के – स्वप्नावस्था के पहले के—भिखमंगे साधु नहीं हैं।" – विश्वनाथ गणेश आगाशे बी० ए०

(६) "वह रथ अर्जुन का है, और यह भगवान् कृष्ण अपना दिव्य गीत– नर को नारायण का सन्देश—कह रहे हैं ······।"

—पं० शिवाधार पाण्डेय एम० ए०

(७) "श्रीकृष्ण ने धर्म का क्या मार्ग बतलाया—इस प्रश्न का उत्तर देना श्रीकृष्ण के जीवन के सच्चे तात्पर्य को जान लेना है।"

—पं० शिवाधार पाण्डेय एम० ए०

(८) "भगवान् कृष्ण ने जय का—संसार-जय का—सीधा, सरल, रास्ता बतलाया है।"—पं० शिवाधार पाण्डेय एम० ए०

(९) "कर्तव्य तो हम लोगों का यह था कि घर का सारा सामान—नोन, तेल, लकड़ी—हमी इकट्ठी करते ....।"

—पं० रामलखन शुक्ल बी० ए०

(१०) मनुष्य की क़द्र अनुभवी लोगों के कथनानुसार दो प्रकार से होती है—एक मरने पर और दूसरे, कहीं चले जाने पर, ...।"

—पं० रामलखन शुक्ल बी० ए०

(११) "आज उनकी एक एक बात सुनने के लिए, उनकी एक हलकी मुस्कराहट देखने के लिए, उनसे एक बार मिल लेने के लिए, हम लोग तरस जाते हैं—पर यह क्या सम्भव है ?"

(१२) "मैं आज भी उनके बँगले पर जाता हूँ—पर ज्यों ही फाटक में घुसता हूँ— दिल में एक चोट लगती है—वे न होंगे !"

—विद्यार्थी

(१३) "पैर के अँगूठे में एक ज़हरीली फुंसी निकली है—पैर सड़ रहा है ।"—विद्यार्थी

(१४) "लेकिन—मेरे कहने से क्या हो सकता था ?"—विद्यार्थी

(१५) "लेकिन, इस संकोच का एक कारण भी था— जब हम लोगों ने प्रयाग छोड़ा था, पंडितजी २० रुपया मासिक किराये के एक साधारण मकान में रहते थे—और अब ?"—विद्यार्थी

(१६) "पंडितजी का प्रेस उस समय कर्नलगंज मुहल्ले में था—कुछ विशेष बड़ा न था और न उसमें चमकदमक ही थी ।" —विद्यार्थी

(१७) "यही—इस विधान का अज्ञान ही हमारा सांसारिक बल है ।"—पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

(१८) "उन्होंने कहा—किया था, पर इस फुंसी के कारण आज रोक दिया है ।"— पं० चन्द्रशेखर शास्त्री

(१९) "वे कब अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त होकर जीवन को समाप्त कर देंगे—इसको कौन जानता है ।" —श्रीहरिऔध

(२०) "उन्होंने दो मासिक पुस्तकें— विद्यार्थी और खिलौना निकालीं।"—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२१) "अतएव वे अच्छी भाषा का न सही तो, सरल, व्याकरण-सम्मत और बामुहावरा भाषा का— महत्त्व तो ज़रूर ही समझते होंगे।"

—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी

(२२) "ज्यों ही आप अपना अध्ययन-काल समाप्त करेंगे और आर्थिक आय करने लगेंगे—तब आपका गृहस्थ-जीवन वास्तव में शुरू होगा।"—रुद्रदत्त

(२३) "रामचन्द्र चलने लगे तो कौशल्या ने रोकर कहा कि बेटा, जंगल में बड़े बड़े राक्षस रहते हैं, उनसे बहुत सावधान रहना और जानकी का विशेष ध्यान रखना —यद्यपि इसकी आवश्यकता न थी।"

—रुद्रदत्त

(२४) "अब यह आशा करना दुराशामात्र है कि कभी भारतवर्ष में फिर रामचन्द्र ऐसा मर्यादा पुरुषोत्तम आदर्श पुरुष, युधिष्ठिर सा धर्म्म-प्राण, भीष्म सा ब्रह्मचर्य्य-व्रती, अर्जुन सा धनुर्धर, भीम सा बली पुरुष उत्पन्न कर सकेगा— फिर कभी यह देश इन्द्र के वैभव और सुशासन को लज्जित करनेवाले सम्राटों से शासित और सुराज्य के पुण्य से धरा पर ही स्वर्ग के सुख पानेवाले प्रजाजन को आनन्द-पुलकित देख सकेगा।"

(२५) "मुसल्मान औरतें हमेशा, और हिन्दू औरतें बहुधा, बन्द सवारियों में यहाँ आती हैं—परदेदार गाड़ियों में छुपकर, या छोटी डोलियों में बैठकर जो मुश्किल से इतनी ऊँची होती हैं जिसमें वे झुककर भी बैठ सकें जैसे मानो कुली गठरियों को बाँस में लटकाये लिये जा रहे हों।"—श्रीउमा नेहरू

(२६) "इस जगत् में जिस प्रकार व्यवहार होते हैं—उसी प्रकार सूक्ष्म देहों से अन्य लोकों में व्यवहार होते हैं।"—वेदोदय

अवतरण नं० ४ में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने आदेशक के बाद उद्धृत वाक्य दिया है। यहाँ आदेशक के पहले (:) विशेष विराम होना चाहिए था। इसी प्रकार पाँचवें अवतरण में 'कहा' के बाद आदेशक न चाहिए। अवतरण नं० ११ में आदेशक का प्रयोग निरर्थक है, वास्तव में यहाँ अर्द्ध विराम की आवश्यकता थी। अवतरण नं० १२ में प्रथम दो आदेशक तो आदेशक की विडंबना करने के लिए रक्खे गये हैं; केवल तीसरे आदेशक का अस्तित्व उचित है। अवतरण नं० १३ में आदेशक के स्थान में 'और' रहने से अधिक अच्छा होता और चौदहवें में 'लेकिन' के बाद आदेशक को रखने के अर्थ तो यह हैं कि चाहे जिस आदमी को केवल इसलिए फाँसी दे दी जाय कि वह मोटा-ताज़ा है। अवतरण नं० १५ और १६ में आदेशक का प्रयोग उचित है। नं० १७ में शास्त्रीजी ने 'यही' के बाद आदेशक रखकर 'अज्ञान ही' के बाद उसे फिर रखने की चिन्ता नहीं की। प्रस्तुत वाक्य में भले ही यह बहुत भद्दा न जान पड़े, परन्तु यदि 'अज्ञान' 'यही' के साथ कारक की दृष्टि से समतोलित न होता तो वाक्य बहुत असुन्दर हो जाता। २० वें अवतरण में द्विवेदीजी ने 'विद्यार्थी और खिलौना' के बाद आदेशक रखने की कृपा न करके 'विद्यार्थी' और 'खिलौना' दोनों को लिंग-सम्बन्धी सन्देह में डाल दिया है।

(क) प्रथम अवतरण में आदेशक का प्रयोग अनुचित नहीं है। वह इस सिद्धान्त पर अवलम्बित है कि आदेशक के पहले लिखे गये किसी पद का पर्यायवाची कोई शब्द-समूह, अथवा

उसकी व्याख्या आदि आदेशक के आगे लिखी जा सकती है। फिर भी लेखक यह न भूले कि आदेशक के आगे आनेवाली व्याख्या की भाषा व्याकरण की दृष्टि से पूर्ववर्ती शब्द से बहुत अधिक असंगत न होनी चाहिए, जैसी कि इस उदाहरण में है। इस त्रुटि के कारण वाक्य का सौन्दर्य नष्ट होता है। यदि यह अवतरण निम्नलिखित ढंग से लिखा गया होता तो सर्वथा सुन्दर हो जाता:—

"किन्तु यहाँ पर और एक नई चीज़ आ गयी है—पश्चिम परिवर्तनशील हस्तक्षेप का फल यहाँ की स्थिति में जो विघ्न डाले रहा है वह यह कि सम्भवतः विदेशियों की विचित्र सहानुभूति से प्रोत्साहित होकर अछूत लोग अब बहुत दिनों तक इसे गवारा न कर सकेंगे कि उनकी धार्मिक स्थिति का निर्णय करना उच्च जाति के हिन्दुओं की इच्छा और स्वच्छन्दता पर निर्भर रहे।"

श्रीमती उमा नेहरू ने अपने वाक्य आदेशक के पहले 'आ गयी' लिखा है, उन्होंने आदेशक के बाद आनेवाली व्याख्या के वाक्य की प्रधान क्रिया 'डाल रहा है' के साथ 'आ गयी' को समतोलित करने का प्रयत्न बिलकुल ही नहीं किया, जिससे आदेशक का प्रयोग सही होने पर भी वाक्य में बहुत बड़ा भद्दापन आ गया है। लेखकों को इस दोष से बचना चाहिए।

अवतरण नं० २ में आदेशक का प्रयोग बिलकुल अनावश्यक है। इसी वाक्य को यदि हम इस ढंग से लिखें कि प्रथम आदेशक के स्थान में अर्द्ध विराम और दूसरे के स्थान में पाई का प्रयोग किया जाय तो वाक्य की सुन्दरता बढ़ जाय। इस प्रकार के प्रयोग वास्तव में आदेशक के दुरुपयोगमात्र हैं।

(ख) बहुधा आदेशक किसी ऐसे शब्द वा शब्द-समूह की सूचना देता है जिसकी पाठक ने आशा नहीं की थी और जो वाक्य को समाप्त करता है। उदाहरण-रूप में अवतरण नं० ३ प्रस्तुत किया जा सकता है। इसमें 'मागधी और शौरसेनी' के पहले आदेशक रखकर प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा की गयी है। किन्तु इस प्रकार के प्रयोगों से लेखक को बचना चाहिए, क्योंकि प्रभाव डालने का यह कृत्रिम उपाय है; वाक्य का स्वाभाविक सौन्दर्य अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता है।

(ग) कभी-कभी सम्पूर्ण वाक्य की आलोचना के रूप में आदेशक के आगे कुछ कथन किया जाता है। अवतरण नं० २२ को पाठक देखें। इसमें आदेशक के बाद आनेवाला वाक्य 'यद्यपि इसकी आवश्यकता न थी' व्यङ्गात्मक है, वह रामचन्द्र की असीम शक्तियों की ओर संकेत करता है। किन्तु यदि आलोचनात्मक अंश में कुछ व्यङ्ग न हो तो इस प्रकार के आदेशक-प्रयोग से बचना चाहिए, क्योंकि फिर तो यह एक स्पष्ट बात की व्यर्थ ही पुनरुक्ति-सी करके पाठक की बुद्धि पर कटाक्ष और उसका अपमान करना हुआ। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य को लीजिए:—

"मास्टर ने बालक को सच बोलने की शिक्षा दी—जो बहुत अच्छी बात है।"

यहाँ आदेशक के आगे आने वाला आलोचनात्मक वाक्य वास्तव में पाठक की दिल्लगी उड़ाता है।

(घ) कभी-कभी बहुत बड़े-बड़े वाक्यों में लम्बे कर्ता शब्द

वा पद अथवा अधीन वाक्य के बाद प्रधान वाक्य वा क्रिया के फिर आ जाने पर केवल इसलिए आदेशक का प्रयोग आवश्यक हो जाता है कि वाक्य पर से पाठक का अधिकार क्षीण न हो जाय। अवतरण नं० २३ को पाठक देखें। इसमें यदि 'कभी भारतवर्ष फिर' को 'फिर कभी यह देश' के रूप में दुहराते हुए तथा उसके पहले आदेशक रखकर आगे न बढ़ें तो वाक्य का भारीपन पाठक को भारावनत कर दे और संभवतः उसकी विचार-शृंखला ही टूट जाय।

(च) एक ही वाक्य में जब वक्ताओं के बदलने की सूचना देनी होती है तब भी आदेशक का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए:—

"समस्त संसार का प्राचीन गुरु, जिस समय समस्त देश अज्ञान के अन्धकार से घिरे हुए थे उस समय भी ज्ञान के दिव्य आलोक से आलोकित, धरा पर ही स्वर्ग का स्मरण दिलानेवाला सुरम्य देश कौन सा है?—भारतवर्ष।"

(छ) आदेशक का प्रयोग (:) विशेष विराम के साथ 'निम्न-लिखित' की सूचना देने के लिए होता है उदाहरणार्थ:—

(१) "महात्मा तुलसीदास का वचन है:—प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।"

(२) "लोकमान्य तिलक का कहना है:—स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है।"

(ज) (१) कोई सूची पेश करने में, (२) शुरू की हुई वाक्य-रचना की प्रणाली के स्थान में कोई दूसरी चला देने में, (३) वाक्य को एकदम से तोड़ देने में, (४) तथा कोष्ठक का काम लेने के लिए

भी आदेशक का प्रयोग किया जाता है । इनके उदाहरण क्रमशः निम्नलिखित हैं:—

(१) हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तीन हैं—सूरदास, तुलसीदास, और कबीरदास।

(२) और उसके मनोहर मृग-नयन —कौन ऐसा है जो उन्हें अश्रुजल से आर्द्र देखकर पानी-पानी न हो जाय ?

(३) आह ! मेरी यह कैसी दुर्गति !—मेरी प्यारी लड़की, जिसे दुःख से सर्वथा अपरिचित रहकर फूल की सेज पर सोना चाहिए था, आज भूख से व्याकुल होकर और रो-रोकर कंकड़ों पर सो गई है।

(४) प्रत्येक अच्छे शासक का—और महाराज अशोक एक अच्छे शासक थे—यह कर्तव्य है कि वह अपने प्रजाजन के चरित्र पर विशेष ध्यान दे।

आदेशक के सम्बन्ध में स्वभावतः तीन प्रश्न खड़े होते हैं। (१) क्या स्थान-विशेष में, जहाँ किसी प्रकार का विराम अन्यथा आवश्यक है, आदेशक के प्रयोग के बाद उक्त विरामों की आवश्यकता नहीं रह जाती ? (२) आदेशक के बाद आनेवाले वाक्यांश में जो विराम प्रयुक्त होते हैं उनके प्रति आदेशक का क्या सम्बन्ध है ? आदेशक का अधिकार-क्षेत्र कहाँ तक माना जाय ? क्या वाक्य के अन्त तक ? (३) यदि विरामों के साथ इसका संयोग किया जा सकता है तो कौन आगे रहे, कौन पीछे रहे ?

पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि आदेशक का प्रयोग करने पर सन्नद्ध होना ही इस बात की सूचना है कि उस स्थान पर अन्यथा प्रयुक्त होनेवाला विराम-संकेत यथेष्ट नहीं है; अतएव

अन्य किसी विराम-चिन्ह की वहाँ आवश्यकता नहीं रह जाती। फिर भी कई स्थल ऐसे हो सकते हैं जहाँ पाठक की सुविधा की दृष्टि से विराम-संकेत का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। (च) विभाग में दिया गया उदाहरण तथा (ज) विभाग के उदाहरण नं० ३ में ऐसे स्थल पाठक देख सकते हैं।

इस संक्षिप्त नियम के अतिरिक्त पाठक को एक बात और जान लेनी चाहिए। जब वाक्य में दो आदेशक प्रयुक्त होते हैं तब वे एक प्रकार से कोष्ठक का काम देते हैं। यह सच है कि जहाँ से कोष्ठक आरम्भ होता है वहाँ से लेकर उसकी समाप्ति के स्थल तक किसी भी ऐसे विराम-संकेत का प्रयोग अनावश्यक है, जिसकी वाक्य के भीतर रहने की कोई उपयोगिता नहीं है। हमारे कहने का मतलब यह है कि जहाँ प्रथम आदेशक प्रयुक्त होता है वहाँ उसके ठीक बाद ही किसी विराम-संकेत की ज़रूरत नहीं होती और जहाँ वह समाप्त होता है वहाँ प्रश्न-वाचक अथवा आश्चर्य आदि के चिन्ह के अतिरिक्त और किसी की ज़रूरत नहीं होती। परंतु यदि दोनों आदेशकों के बीच का वाक्य भी मिश्र वाक्य है, तो, जैसा कि कोष्ठकों के होने पर होगा, उसमें आवश्यक विराम-संकेत रक्खे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, पाठक इस अध्याय के आरंभ में दिये गये अवतरणों में से नम्बर २४ को देखें। इसमें एक ही आदेशक से काम लिया गया है, परंतु हमारी समझ में 'बैठ सकें' के बाद एक और आदेशक रख दिया जाय तो वाक्य बहुत सरल और सुन्दर जान पड़ने लगे। साथ ही यद्यपि 'परदेदार' और 'बैठ सकें' तक का

वाक्यांश दो आदेशकों के मध्य रहेगा तथापि, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, 'बैठकर' के बाद अल्प विराम आवश्यक होगा; क्योंकि यह आदेशकों के बीच में स्थित वाक्य मिश्र वाक्य है।

दूसरा प्रश्न है—आदेशक का कार्य्य-क्षेत्र कहाँ तक है ? इस सम्बन्ध में पाठक को यह नियम स्मरण रखना चाहिए:—

प्रथम आदेशक के बाद तथा द्वितीय आदेशक वा पूर्ण विराम के पहले तक का अंश आदेशक के प्रभाव-क्षेत्र में समझा जाता है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वाक्य पर पाठक दृष्टिपात करें:—

"श्रीरामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ करने की सारी तैयारी कर ली—अश्वमेध यज्ञ तब किया जाता था, जब संसार के समस्त राजा लोहा मान लेते थे—और अपनी महत्ता का सूचक अश्व छोड़ देने के लिए प्रधान मंत्री को आज्ञा दी।"

उक्त वाक्य में पाठक देखेंगे कि हमारे नियम के अनुसार 'कर ली' से लेकर 'लेते थे' तक आदेशक का साम्राज्य है; किन्तु हम देखते हैं कि एक अल्प विराम ने 'जाता था' के बाद अनधिकार-प्रवेश करने की धृष्टता की है। लेकिन थोड़ा ही विचार करने के बाद यह स्पष्ट हो जायगा कि यह अल्प विराम आदेशकों के मध्य में स्थित वाक्य की आन्तरिक गति के नियमन के लिए है, मूल वाक्य से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

अब रहा यह प्रश्न कि विराम-संकेत आदेशक के पहले रहे या पीछे ? यह पहले ही कहा जा चुका है कि या तो आदेशक साधारणतया प्रयुक्त होनेवाले अल्प विराम के स्थान में रक्खा

जाता है या उसकी अभिवृद्धि के रूप में। इस कारण आदेशक का स्थान साधारण विराम-संकेत के बाद होगा। यह तो उस अवस्था में होगा जब कि हमारे वाक्य में एक ही आदेशक का प्रयोग किया गया है। किंतु यदि दो आदेशक होंगे तो प्रधान वाक्य की आवश्यकता के अनुसार एक विराम-संकेत होगा, दो न होंगे, और यह दूसरे आदेशक वा कोष्टक के बाद रक्खा जायगा। उदाहरणार्थ—

"जब कलकत्ते में उसने व्याख्यान दिया — जो एक अपूर्व बात थी—, तो उस पर बहुतों की श्रद्धा हो गई।"

तृतीय अध्याय

कुछ अन्य विराम-चिन्ह

शेष विराम-चिन्हों में उद्धरण-चिन्ह, निम्नलिखित के चिन्ह, संकीर्णता-सूचक चिन्ह और टिप्पणी-सूचक चिन्हों की चर्चा ही शेष रह गई है। इन तीनों में उद्धरण-चिन्ह विशेष ध्यान देने योग्य हैं। शेष के प्रयोग में किसी पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं।

आधुनिक गद्य में यदि अल्प विराम, अर्द्ध विराम, प्रश्न-वाचक, आश्चर्यवाचक आदि चिन्हों की आवश्यकता है तो उद्धरण-चिन्हों के विना भी काम नहीं चल सकता। परंतु अन्य चिन्हों के प्रयोग में उतनी अस्त-व्यस्तता नहीं देखी जाती जितनी

इस चिन्ह के सम्बन्ध में। नीचे के कुछ अवतरणों को देखिए:—

१—(क) कठोपनिषद् का वाक्य है:—

नित्योऽनित्यानं चेतनश्चेतनाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरा:
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।

(ख) भावार्थ—"जो मनुष्य अनित्य में नित्य का दर्शन करता है, जो मनुष्य उसे जानता है, जो चेतनों का चैतन्य और जीवों का जीवन है, जिस मनुष्य को उसका ज्ञान है, जो एक होते हुए भी अनेक जीवों की इच्छा पूर्ण करता है, उसी को शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, अन्य किसी को नहीं।" —चाँद

२—(अ) मनु-वचन की टीका करते हुए श्रीकुल्लूक भट्ट यों लिखते हैं—

"धर्मं च ज्ञातुमिच्छतां प्रकृष्टं प्रमाणं श्रुतिः प्रकर्षबोधनेन च श्रुतिस्मृतिविरोधे स्मृत्यर्थो नादरणीय इति भावः"।

× × ×

(आ) अतएव जाबालः—

श्रुति-स्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी।
अविरोधे सदा कार्य्यं स्मार्त्तं वैदिकवत्सता॥

—इंदिरारमण शास्त्री

३—हमें इस स्थान पर लार्ड टेनीसन की निम्नलिखित पंक्तियाँ याद आ रही हैं।

(अ) The old order changeth yielding place to new,
And God fulfils himself in many ways.

\+ + +

इसको उदाहरण देकर इस प्रकार हम बतला सकते हैं।

(आ) गद्य १—गतिहीन

"अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए हमें जिन साधनों को अपनाना पड़ता है उनमें ही सदा पाप और पुण्य मिला करता है।"

—श्री भगवतीचरण वर्मा

इन तीनों अवतरणों पर पाठक विचार करें। तीनों में वे देखेंगे कि एक ही श्रेणी के दो स्थलों में से लेखकों ने एक में उद्धरण-चिन्हों का प्रयोग किया है और दूसरे में नहीं किया। उद्धरण-चिन्हों का सर्वथा बहिष्कार तो समझ में आ सकता है, पर एक ही लेख में पास-ही-पास कहीं उनका प्रयोग और कहीं उनका अभाव असंगत जान पड़ता है; इससे केवल यही जान पड़ता है कि लेखकों ने इन चिन्हों के वैज्ञानिक प्रयोग की ओर ध्यान नहीं दिया।

उद्धरण-चिन्हों के साधु प्रयोग से अनेक लाभ हैं। उनमें से कुछ नीचे लिखे जाते हैं:—

(१) शब्दार्थ की दुविधा का बहुत कुछ निवारण हो सकता है।

(२) किसी विशेष शब्द के प्रयोग की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है।

(३) शब्द-विशेष किसी विदेशी भाषा का है, यह सूचित किया जा सकता है।

(४) किसी अच्छे लेखक या वक्ता के शब्द, पद या वाक्य का प्रयोग कर के वाक्य-विशेष का अलंकरण किया जा सकता है।

इन चारों लाभों को उदाहृत करनेवाले निम्नलिखित वाक्यों को पाठक देखें जो इन्हीं के क्रम के अनुसार दिये जाते हैं:—

१—'सरस्वती' देवी की कृपा से मुझे हिन्दी भाषा से प्रेम हुआ।

—एक पाठक

इस वाक्य में यदि सरस्वती के दोनों ओर उद्धरण-चिन्ह न हों तो 'सरस्वती'-नामक पत्रिका की ओर ध्यान नहीं जा सकता।

२—अमरीका आदि देशों की शासन-पद्धति लिखित* (Written) कही जाती है; और इसके विपरीत, इँग्लैण्ड की शासन-पद्धति 'अलिखित' मानी जाती है। —श्रीदयाशंकर दुबे

३—उन पर पहले तो 'पिक्ट' और 'स्काट' लोगों ने हमला किया।

४—(क) कवि को जिस समय कोई बात सूझी उसी समय उसने सम्पूर्ण भाव, दृश्य वा चित्र इत्यादि को एक मनोहर दोहे में संगठित करके ठूँस-ठूँसकर भर दिया और पाठकों के लिए कविवाणी "अर्थ अमित अति आखर थोरे" के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण बना डाला। —श्रीरमाशंकरप्रसाद श्रीवास्तव

(ख) हर एक दोहे पर एक एक मुहर पाई,

"चारि पाख के माँझ में कविता को रचि दीन्ह।,"

फिर घर आये, तब डोरी लागी प्रेम की वृन्दावन के माहिं।"

—श्रीरमाशंकरप्रसाद श्रीवास्तव

(ग) "विहारी की दृष्टि संसार भर के सभी पदार्थों पर बड़ी पैनी पड़ती थी और यह महाशय अपने मतलब की बात खूब देख लेते थे।" (मिश्रबन्धु) मानव-जीवन का इनको इतना

---

* यहाँ 'लिखित' शब्द भी उद्धरण - चिन्हों के साथ लिखा जाना चाहिए था।

पूर्ण ज्ञान था और प्रत्येक भावना को तथा साधारण वस्तुओं के गूढ़ को ये इतना समझते थे कि पाठक दंग होके रह जाता है।

उक्त उदाहरणों में से वे वाक्य, पद, या शब्द जो अन्य लेखकों की रचना से लिये गये हैं, उद्धरण-चिन्हों के अभाव में उस लेखक के प्रयोग के रूप में भी समझे जा सकते हैं जिसने उनसे सहायता ली है। उद्धरण-चिन्हों की यह उपयोगिता तो सर्व-सम्मत है, किन्तु यदि उनसे इस प्रकार की उचित से अधिक सहायता ली जायगी तो अन्य दृष्टियों से रचना-शैली सदोष हो जायगी; क्योंकि उद्धरणों का प्रचुर समावेश मूर्ख अथवा अल्प-पठित समाज में भले ही प्रभावशाली समझा जाय, किन्तु पंडित-मंडली में, जो लेखक की बहुपाठिता के स्थान में मौलिकता का परिचय पाने के लिए अधिक उत्सुक हो सकती है, उसका विशेष आदर नहीं हो सकता।

उद्धरण-चिन्हों का प्रयोग बहुधा वाक्य के आरम्भ या मध्य में होता है और कभी-कभी उद्धृत वाक्य वहीं जाकर समाप्त होता है जहाँ समावेशक वाक्य की इति होती है। उदाहरण के लिए नीचे के कतिपय वाक्य देखिए। इनमें से प्रथम दो ऐसे हैं जिनमें उद्धरण-चिन्ह आरम्भ या मध्य में आया है और शेष दो ऐसे हैं जिनमें समावेशक वाक्य के अन्त तक उनका विस्तार हुआ है:—

(१) इस 'वाह' 'वाह' की शायरी के ज़माने में भला कोई महाकाव्य रचने की धीरता रख सकता था !

—रामचन्द्र शुक्ल

(२) उनके नायक हमारे 'राम' हैं। —रामचन्द्र शुक्ल

(३) कवि ने अपनी आँख फूटने का उल्लेख पदमावत में किया है—"एक नयन कवि मोहमद गुनी।" —रामचन्द्र शुक्ल

(४) आप लिखते हैं—"मोहमद बाईं दिसि तजा एक सरवन, एक आँखि।"

उक्त उदाहरणों में से प्रथम दो के सम्बन्ध में हमें कुछ कहना नहीं। परन्तु अंतिम दो के सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि समावेशक वाक्य का पूर्ण विराम ठीक नहीं रक्खा गया। वास्तव में अंतिम उद्धरण-चिन्हों को, वे आरम्भिक हों वा अंतिम, विराम-चिन्हों की आवश्यकता होती ही नहीं; उद्धृत अंश तो बक्स के भीतर बंद-सा कर के वाक्य में रख दिया जाता है। ऐसी दशा में समावेशक वाक्य का पूर्ण विराम-चिन्ह उद्धरण-चिन्हों के बाद रक्खा जाना चाहिए। इस प्रकार पं० रामचन्द्र शुक्ल के अंतिम दो वाक्यों का रूप इस प्रकार होना चाहिए :—

(३) कवि ने अपनी आँख फूटने का उल्लेख पदमावत में किया है—"एक नयन कवि मोहमद गुनी"।

(४) आप लिखते हैं—"मोहमद बाईं दिसि तजा एक सरवन, एक आँखि"।

इस नियम का पालन प्रायः सर्वत्र किया जाता है, केवल दो स्थल ऐसे हो सकते हैं जहाँ पं० रामचन्द्र शुक्ल के उक्त प्रयोग अर्थात् अंतिम उद्धरण-चिन्ह के पहले वास्तविक विराम-चिन्ह के प्रयोग ठीक कहे जा सकते हैं। ये हैं (१) ऐसे वाक्य जो किसी संवाद के अंग होते हैं और एक दूसरे से व्याकरण की दृष्टि

से स्वतंत्र और पृथक् होते हैं; (२) ऐसे उद्धरण-वाक्य जिनके बीच में कुछ बाधक शब्द इस ढंग से आ जाते हैं कि एक खंड को दूसरे से अलग करने के लिए किसी विराम-चिन्ह की आवश्यकता पड़ जाय।

इन दोनों अपवादों के कुछ उदाहरण पाठक नीचे देखें :—

(१) "अच्छा एक काम करो।"

"बताइए!"

"उसे विधवा-आश्रम में दाखिल कर दो।" —श्रीकौशिक

(२) 'सच है'; उसने पीड़ा का अनुभव करते हुए कहा 'संसार में कोई भी अपना नहीं।' —रामचन्द्र त्रिपाठी

उद्धृत वाक्य के बीच में जो बाधक शब्द आ जाते हैं उन्हें स्वतंत्र रूप से किसी विराम-चिन्ह की आवश्यकता नहीं होती। इस तरह की वाक्य-रचना-शैली का अभी हिन्दी में अधिक प्रचार नहीं हो सका है। इसके अनुकरण का थोड़ा-बहुत प्रयत्न हुआ भी है तो वह उचित पथ पर नहीं पाया जाता।

नीचे के दो अवतरणों को पाठक देखें :—

(१) 'तुम्हें नहीं मालूम'—वह रुककर कहने लगा—'आज भारत-सरकार ने हमारी शर्तें मान ली हैं। —श्रीइकबालबहादुर वर्म्मा

(२) 'भले क्यों नहीं।'—पुरुष ने उत्तर दिया—'उन्होंने विना देश को अधिक संकट में डाले हमारी माँगें पूरी कर दीं।'

—श्रीइकबालबहादुर वर्म्मा

इन दोनों अवतरणों में पाठक देखेंगे कि प्रथम अवतरण के उद्धरण के प्रथम खण्ड में जहाँ द्वितीय उद्धरण-चिन्ह रक्खा गया

है उसके बाद आदेशक का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार उद्धरण के बाधक शब्द दो आदेशकों के बीच में रक्खे गये हैं; यह सर्वथा अनावश्यक है। दूसरे अवतरण में तो एक और अनावश्यक बात का समावेश हो गया है, उसके प्रथम खण्ड के द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के पहले पूर्ण विराम का प्रयोग कर दिया गया है। यह पूर्ण विराम न केवल अनावश्यक है, किन्तु बाधक भी है; इसका प्रभाव यह भी हो सकता है कि पाठक वहीं वाक्य को समाप्त समझ ले। हमारी समझ में इन वाक्यों का रूप यों होना चाहिए था :—

(१) 'तुम्हें नहीं मालूम' वह रुक कर कहने लगा आज भारत-सरकार ने हमारी शर्तें मान ली हैं।

(२) 'भले क्यों नहीं' पुरुष ने उत्तर दिया 'उन्होंने बिना देश को अधिक संकट में डाले हमारी माँगें पूरी कर दीं।'

हाँ, द्वितीय वाक्य के प्रथम खण्ड के अंत में प्रश्नवाचक चिन्ह का प्रयोग किया जा सकता है, जो निस्सन्देह द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के पहले ही रहेगा।

अब एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर थोड़ा विचार कर लेना भी हमारे लिए परमावश्यक है। वह यह कि प्रश्नवाचक अथवा आश्चर्य्य-विस्मय-आदि वाचक चिन्ह द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के पहले रक्खे जायँ अथवा बाद को। इसके सम्बन्ध में उचित निर्णय पर पहुँचने के पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि जिस प्रश्न-वाचक आदि चिन्ह का स्थान हम निर्दिष्ट करना चाहते हैं उसका सम्बन्ध मूल वाक्य से है जिसमें उद्धरण समाविष्ट है, अथवा

स्वयं उद्धरण के भाव को व्यक्त करने के लिए उसका प्रयोग हो रहा है। उस अवस्था में जब कि प्रश्नवाचक आदि चिन्हों का सम्बन्ध समावेशक वाक्य से है, यह स्पष्ट ही है कि द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के बाद ही उसको स्थान मिलना चाहिए। इसी प्रकार यदि इन चिन्हों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उद्धरण से है तब तो उसे द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के पहले ही रखना ठीक है। नीचे के कुछ वाक्यों को देखिए:—

(१) एक दिन नागमती राजा की अनुपस्थिति में शृंगार करके शुक के समीप आयी और पूछने लगी "क्यों शुक, मेरे जैसा रूप तुमने नहीं देखा है ?"

—रामचन्द्र शुक्ल

(२) "क्या कहूँ मालिक ! वह आप तो गया ही, साथ साथ हम लोगों को भी बाल बच्चों समेत चौपट कर गया। अब आप ही कुछ उपाय बताइए सरकार !"

—श्रीललितकिशोरसिंह

प्रथम अवतरण का प्रश्नवाचक और दूसरे का सम्बोधन-सूचक चिन्ह ठीक ही प्रयुक्त हुआ है। लेकिन नीचे के अवतरण में इसका ठीक उलटा हुआ है:—

"यह कैसे अन्धेर की बात है कि आप हिन्दू होकर यह प्रश्न कर रहे हैं "गायत्री किस चिड़िया का नाम है" ?

मूल वाक्य विस्मयवाचक चिन्ह की अपेक्षा करता है किन्तु द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के बाद प्रयोग होने के कारण यह भ्रम हो जाता है कि प्रश्नवाचक चिन्ह का सम्बन्ध मूल वाक्य से है। इस भ्रम के निवारण के लिए यह आवश्यक है कि प्रश्नवाचक चिन्ह द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के पहले रक्खा जाय और उद्धरण-

चिन्ह के बाद विस्मयवाचक चिन्ह । एक लंबे उद्धरण को लेकर, जिसमें अनेक स्वतंत्र वाक्य भी सम्मिलित हों, हम इस विषय को और भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं । नीचे का अवतरण देखिए:—

इसका क्या कारण है कि तुम कहते हो "मैं बिना दवा के ही चंगा हो जाऊँगा; मैं प्रकृति की आराधना कर के रोग को नष्ट कर दूँगा; मैं ईश्वर की चिन्ता कर के स्वास्थ्य-लाभ करूँगा ।" —रामचन्द्र त्रिपाठी

इस अवतरण के अंत में प्रश्नवाचक चिन्ह क्यों नहीं है ? वास्तव में अन्तिम शब्द "करूँगा" के बाद पूर्ण विराम की कोई आवश्यकता नहीं थी; द्वितीय उद्धरण-चिन्ह से उसे घेर कर अन्त में प्रश्नवाचक चिन्ह दे देने से वाक्य का विराम-चिन्ह-प्रयोग-गत सौन्दर्य्य निखर आता है ।

किन्तु कहीं-कहीं पूर्ण विराम तथा स्वरसूचक चिन्हों में विचित्र कुश्ती हो जाती है । नीचे का अवतरण ऐसा ही है:—

मैनेजर ने कहा—"अच्छा, अब दफ्तर में चलिए !"

इस अवतरण में द्वितीय उद्धरण-चिन्ह के पहले के स्वरसूचक चिन्ह का सम्बन्ध तो उद्धरण से है । फिर वाक्य का पूर्ण विराम कहाँ है ? सच बात यह है कि ऐसे स्थलों में स्वरसूचक चिन्हों के प्रयोग ही में पूर्ण विराम की आवश्यकता की पूर्त्ति समझकर संतोष कर लिया जाता है । अँगरेजी में भी यही प्रणाली चल रही है, किन्तु उसकी सदोषता तो स्पष्ट है ।

उद्धरण-चिन्हों के दो प्रकार के प्रयोग किये जाते हैं । एक में तो दो चिन्ह लगाये जाते हैं, दूसरे में केवल एक । उदाहरण के लिए निम्नलिखित अवतरण देखिए:—

१—एक दिन रतनसेन ने पूछा 'द्विज कब है'। —रामचन्द्र शुक्ल

२—उसी समय यह कल्पना चरितार्थ होती है कि 'मनुष्य अखिल विश्व का स्वामी है'। —चाँद

कहाँ दो चिन्हों का प्रयोग होना चाहिए और कहाँ एक का, इसके सम्बन्ध में कोई नियम बनाना अनावश्यक है; दोनों ही से उद्धरण का संकेत होता है। किन्तु एक स्थल तो ऐसा हो सकता है जहाँ दोनों के प्रयोग से वाक्य-सौन्दर्य्य की वृद्धि की जा सकती है। उदाहरण का लिए नीचे के वाक्य देखिए:—

"मेरा रक्त उबल रहा था, अब मुझसे सब्र न हो सका, मैंने डपट कर कहा—'गौरी! तू यह क्या बक रही है? कहीं मुझे किसी प्रकार के माया-जाल में तो नहीं फँसा रही है? कहीं तू पगली तो नहीं हो गई है?··· ऐसी अनाप-शनाप बातों पर कौन विश्वास करेगा?' ·······।"

—जहूरबख्श

उद्धरण-चिन्ह के सम्बन्ध में इतना निवेदन करके अब हम अपने वक्तव्य को समाप्त करते हैं। आशा है, इन पंक्तियों के पाठक को विराम-संकेतों की उपयोगिता तथा वाक्य की सरलता और सरसता-वृद्धि में उनसे मिल सकनेवाली सहायता के विषय में कोई सन्देह न रह जायगा। हमारा वर्त्तमान हिन्दी-गद्य अब क्रमशः प्रौढ़ता को प्राप्त हो रहा है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिन्दी के लेखक विराम-संकेतों का ठीक-ठीक तथा यथेष्ट प्रयोग करके उसे सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने का प्रयत्न करेंगे।
